

LOK SABHA

Wednesday, 29th February, 1956.

The Lok Sabha met at Eleven of the Clock.

[MR. DEPUTY-SPEAKER in the Chair]

QUESTIONS AND ANSWERS

(See Part)

12 NOON

PAPER LAID ON THE TABLE

BUDGET ESTIMATES OF THE DAMODAR VALLEY CORPORATION

**The Deputy Minister of Irrigation and Power (Shri Hathi):** On behalf of Shri Nanda, I beg to lay on the Table a copy of the budget estimates of the Damodar Valley Corporation for the year 1956-57 under sub-section (3) of section 44 of the Damodar Valley Corporation Act, 1948. [Placed in the Library. See No. S—70/56.]

COMMITTEE ON PRIVATE MEMBERS' BILL AND RESOLUTIONS

FORTY-FIFTH REPORT

**Shri Altekar (North Satara):** I beg to present the Forty-fifth Report of the Committee on Private Members' Bills and Resolutions.

SECURITIES CONTRACTS (REGULATION) BILL

PRESENTATION OF \*REPORT OF JOINT COMMITTEE

**Shri C. C. Shah (Gohilwad-Sorath):** I beg to present the Report of the Joint Committee on the Bill to prevent undesirable transactions in securities by regulating the business of dealing therein,

by prohibiting options and by providing for certain other matters connected therewith.

SALES TAX LAWS (VALIDATION) BILL—Concl'd.

**Mr. Deputy-Speaker:** The House will now resume further consideration of the Sales Tax Laws Validation Bill. Out of 4 hours allotted for this Bill, 2 hours and 30 minutes have already been availed of. This leaves 1 hour and 30 minutes.

After the disposal of this Bill, the House will take up the Life Insurance (Emergency Provisions) Bill till 4-30 P.M. when the House will adjourn to re-assemble at 5 P.M. in connection with the presentation of the Budget by the Minister of Finance.

Shri Heda will now continue his speech on the Sales Tax Laws Validation Bill.

**श्री हेडा (निजामाबाद) :** कल में यह अर्ज कर रहा था कि ग्राम तौर पर यह ब्याल फैला है कि हुकूमत चाहे जो करे वह अपने काम को निभा कर ले जा सकती है। इस सिलसिले में मुझे एक प्राध चीज और अर्ज करनी है।

कल जब इस विधेयक के उपर हाउस (सभा) में बहस हो रही थी तों उसके दौरान में एक सदस्य ने दरियाफ्त (मालूम) किया था कि जिस कम्पनी ने यह दावा दायर किया और जिसके हुक में यह फैसला हुआ, क्या उस कम्पनी की सेल्स टैक्स (बिक्रीकर) देना होगा और अगर देना होगा तो उसको यह सारा शंभट मोल देने से क्या फायदा हुआ ? उसके जबाब में उसी बक्त कहा गया था कि उसको यह सन्तोष मिलेगा कि फैसला उसके हक में हुआ। लेकिन मैं उन को यह बतलाना चाहूंगा कि केवल सन्तोष मात्र किसी ब्यापारिक संस्था के लिए काफी नहीं हो सकता। दर असल इसमें वह कहावत भरिताई होती है कि 'नेकी कर और दरया में डाल'।

\*Published in the Gazette of India Extraordinary, dated 29-2-1956, pp. 11.

[श्री हेडा]

उन्होंने एक दावा दायर किया, एक प्वाइंट क्लि-यर (स्पष्टीकरण) कराया लेकिन खुद उन्हें उससे कोई फायदा नहीं हुआ और उनके सामने जो एक समस्या थी, जो एक सवाल था वह ज्यों का त्यों बना रहा और वह हल नहीं हो पाया। दूसरी तरफ जब हम हुकूमत की पोजीशन स्थिति का ख्याल करते हैं तो उसके सम्बन्ध में एक दूसरी कहावत चरितार्थ होती है और वह यह है कि चित भी 'मेरी और पट भी मेरी जो काम हम ने किया वह अगर ठीक था और दस्तूर के तहत (अधीन) था, तब तो चलिये अच्छा हुआ लेकिन अगर वह दस्तूर के तहत ठीक भी नहीं था तब भी प्रागे चल कर हम यहां आकर उसको रिट्रोस्पेक्टिव एफेक्ट (भुतलभी प्रवाह के साथ) ठीक करा सकते हैं। वहलहाल भ्रम लोग में ख्याल फैल रहा है कि हुकूमत चाहे कोई काम कर ले और वह चाहे कानून दस्तूर के तहत जायज हो या न हो, उसके खिलाफ कोई चारेकार हासिल नहीं है। इस सिलसिले में मेरा केवल इतना निवेदन है कि कम से कम वह सेल्स टैक्स जो अभी वसूल नहीं हुआ है, उसके बारे में हुकूमत (सरकार) को और तरीके से गौर करना चाहिए।

इस विधेयक को एम्स एंड ब्राबजैक्टस दिखा कर उद्देश्य के अन्दर जो शब्द लिखे हैं और बिल (विधेयक) की बाडी के अन्दर जो शब्द लिखे हैं, उनमें जरा सा फर्क है। एम्स एंड ब्राबजैक्टस के अन्दर 'लैबी एंड क्लेक्शन' (आरोपण और संग्रहण) इस तरह से एंड (और) शब्द डाला हुआ है जब कि बिल की बाडी में 'हेब बीन लैबीड और क्लेक्टेड' (आरोपित या संग्रहीत) यह शब्द डाले हुए हैं। एम्स एंड ब्राबजैक्टस को देखने के बाद ऐसा मालूम होता है कि जो इंटर स्टेट सेल्स टैक्स (अंतरराज्यीय विक्री कर) आयद हो चुका, लैबी हो चुका और वसूल हो चुका वह तो वसूल हो चुका और उसको अब जायज कर दिया गया है लेकिन वह टैक्स जो सिर्फ आयद हुआ है और अभी वसूल नहीं हुआ है उसके बारे में एक ऐसा ख्याल पैदा होता है कि शायद उसको वसूल नहीं किया जायेगा। लेकिन बिल का जो दूसरा बलाज (खंड) है उसको देखने के बाद स्पष्ट तौर पर मालूम होता है कि जो अभी वसूल नहीं हुआ है उसको वसूल किया जा सकता है और उसको अदायगी से नजात या माफी नहीं मिल सकती। इसके बारे में मैं अर्ज करूंगा कि जिन से सेल्स टैक्स वसूल हो चुका है और जो रकम सरकार के पास मौजूद है, उसके बारे में मुझे कुछ आस कहना नहीं है और वास्तव में यह काफी मुश्किल हो जाता है कि एक बार

जो पैसा हुकूमत के पास चला जाये, वह उससे वापिस लिया जाये....

श्री यू० एम० त्रिबेदी (चित्तौड़) :  
\* सरकार रिफंड (वापिस करा) देती है।

श्री हेडा : सरकार के पास चले गये पैसे को वापिस लेने के लिए बड़ी दिक्कत और दुश्चारी पैदा होती है और किसी भी तरह की बसूली हो, तगावी हो या दूसरे महसूलता हों, हमने देखा है कि हालांकि सरकार इनकी बसूली करते वक्त यह कह देती है कि भाई इनको आदायगी कर दो, मुमकिन है कि प्रागे चल करके हमें इससे कोई नजात मिल सकेगी और यह भाफ हो जायेंगे और यही वजह है कि जो आदमी ऐसा समझ कर महसूल बगैर अदा कर देता है, वह तो प्रागे चल कर नुकसान में रहता है लेकिन जो आदमी अदा नहीं करता और कोई न कोई हीले बहाने बना कर उसकी अदायगी को टालता जाता है, उसको प्रागे चल कर किसी मौके पर फायदा पहुंच सकता है जिसका मतलब यह हुआ कि जो न्याय होता है वह उलटा हो रहा है। जो ठीक तौर पर अदा करता है वह तो नुकसान में रहता है और जिस ने ठीक तौर पर अदा न करके किसी न किसी तरीके से उसकी अदायगी को रोक रक्खा वह फायदे में रहता है। इस सम्बन्ध में मैं यह अपील करूंगा कि कम से कम जो सेल्स टैक्स आयद हो चुका वह तो हो चुका लेकिन जो अभी तक वसूल नहीं हुआ है उसको वसूल करने की कार्यवाही न की जाये और ऐसा करके हम यकीनन सुप्रीम कोर्ट का जो इस सम्बन्ध में डिशिशन (निरणय) हुआ है, उसकी इज्जत करेंगे। यहां पर यह कहा गया था कि सुप्रीम कोर्ट की इज्जत तो हम करते ही हैं और हम उनके फैसले की भी इज्जत करते हैं और उसी के लिए तो यह बिल हम हाउस की मंजूरी के लिए लाये हैं। आपका ऐसा फरमाना बजा है लेकिन मैं यह कहे बगैर नहीं रह सकता कि यह इज्जत महज टेकनिकल (परिभाषिक) है जब कि आप यह कहते हैं कि सुप्रीम कोर्ट ने जो एक हमारे रास्ते में अड़गा लगाया था, उसको हमने दूर कर दिया है। इस तरह की यह जो भावना है और इज्जत है, जिस तरीके से पूरी इज्जत होनी चाहिए थी वह नहीं हो पाई है। अभी जैसा कि श्री बसल ने कहा और एक दूसरे साहब ने कहा कि इससे बहुत बड़ा क्रदम उठाने का सवाल नहीं है खाली तीन, चार करोड़ रुपये का सवाल है और मैं तो कहता हूँ कि जो हम आलरेडी (पहिले ही) वसूल कर चुके, उसके सम्बन्ध में कोई कार्यवाही न करें, लेकिन

जो अभी बसूल होना बाकी है, और वह बहुत छोटी रकम निकलेगी और उसमें नुकसान की कोई खास बात नहीं है, उसको हम अब बसूल न करें। जिस कानून को सुप्रीम कोर्ट ने नाजायज ठहरा दिया है उसको हम रिट्रास्पेक्टिव (भूतलक्षी) तौर पर जायज करार देकर बकाया की बसूलयाबी न करे और हमारा ऐसा करने से कम से कम कुछ लोगों को राहत मिलेगी और ऐसा करके हम सुप्रीम कोर्ट की मंशा के मुताबिक़ भ्रमल करेंगे और मैं समझता हूँ कि हम इससे मुल्क के अन्दर खुशनुदी (सद्भावना) हासिल करेंगे। इन्हीं चन्द एक भ्रलफ़ाज (शब्दों) के साथ मैं अपना भाषण समाप्त करता हूँ।

**पंडित ठाकुर बास भार्गव (गुड़गाँव):** उपाध्यक्ष महोदय, यह जो आपके रूबरू (सामने) आज कानून मौजूद है, इसके जब मैं ने एम्स एंड भाब-जेक्ट्स (उद्देश्य) को देखा तो मैं यह समझता था कि चूँकि यह मुश्किल है कि जो रुपया कलेक्ट (जमा) हो चुका है वह किस को वापिस किया जाये। मिडिलमैन (दलाल) को अगर वापिस किया जाय तो कंज्यूमर्स (उपभोक्ता) को उसका फायदा नहीं मिलेगा और इस बजह से आनरेबुल फ़ाइनान्स मिनिस्टर (माननीय वित्त मन्त्री) साहब का यह कहना था कि चूँकि असल अशाखास (व्यक्तियों) को जिनसे कि यह रुपया बसूल किया गया है उनको नहीं मिलेगा। बल्कि ऐसे अशाखास को मिलेगा जो फ़िलवाक़य (यथार्थ) में इसके हक़दार नहीं हैं और इस दलील में कुछ जवाब था कि उस रुपये को वापिस न किया जाता, गो कि मैं यह समझता हूँ कि गवर्नमेंट का फ़र्ज इतना ही है कि अगर किसी शस्स से उसने नाजायज तौर पर रुपया बसूल किया है तो गवर्नमेंट को वह रुपया उसी शस्स को वापिस दे देना चाहिये जिससे कि उसने बसूल किया हो। यह इक्वैटी (भावना) कि जिस से गवर्नमेंट ने रुपया बसूल किया और जिस शस्स ने कंज्यूमर्स से बसूल किया और उनके मारबेन है यह दिक्कत पेशा थी कि वह किस को दें और किस को न दें, जहाँ तक गवर्नमेंट का ताल्लूक है, यह रुपया उनको मिलना चाहिए जिनसे कि गवर्नमेंट ने बसूल किया, मैं इस डेलिकेटनेस (बारीकी) आनरेबुल मिनिस्टर के फ़ाइन टेप्परामेंट (अच्छी प्रकृति) और डेलिकेसी आफ़ ला (कानून की बारीकी) की उनकी दलील को समझने को तैयार हूँ कि असल शस्स को अगर रुपया नहीं पहुँचता तो अच्छा है कि वह रुपया गवर्नमेंट के पास ही रह जाये, यह मिनिस्टर साहब का नुक्तेनिगाह (द्रष्टिकोण) था गो कि मैं इसके

साथ एग््रीमेंट (सहमत) में नहीं हूँ, ताहम इसमें कुछ जवाब था लेकिन जब जनाब के तक्षरीफ़ से जाने के बाद एक दो सवाल उठे तो पता लगा कि इसके अन्दर इतना ही नहीं है बल्कि जो आज ऐसे कानून मौजूद हैं जिनकी कि बाबत सुप्रीम कोर्ट ने करार दे दिया कि वह दुस्त कानून नहीं हैं और लालेस लाज (बिधिरहित कानून) हैं और उनके अन्दर कोई एलिमेंट आफ़ जस्टिस (न्याय तत्त्व) नहीं है जिसकी कि बेसिस (आधार) पर उनको कायम रख सकें और उनके तहत किसी को भ्रलत्यार नहीं था कि उस रुपये को बसूल करता, उन लाज के मातहत जो शस्स अभी तक टैक्स देने के लिए लाएबिल हैं, उनसे ईस टैक्स को अभी बसूल किया जायेगा, तो ऐसी हालत में आनरेबुल मिनिस्टर साहब की जो असली दलील थी कि गवर्नमेंट कैसे उस टैक्स की रकम को सही लोगों को वापिस दे जिनसे कि उसने वाक़ई में बसूल किया था, वह दलील बेमानी हो जाती है और वह दलील दरअसल इस कानून के बास्ते नहीं पेश की जा रही है बल्कि वह दलील तो गवर्नमेंट की तरफ से उस इकट्ठा किए हुए रुपये को हज़म करने के बास्ते पेश की जा रही है। गवर्नमेंट को यह बख़ूबी मालूम है कि जिन लोगों से इस टैक्स का रुपया बसूल नहीं हुआ है और जो इसकी जद (सीमा) में आते हैं, अगर गवर्नमेंट उनसे रुपया बसूल न करे तो ठीक मानों में यह सुप्रीम कोर्ट के हुक्म की इज्जत करनी होगी। सुप्रीम कोर्ट के फ़सले के बावजूद और बावजूद इसके कि हमारी राय में वह कानून दुस्त नहीं है, वह इल्लीगल (अवैध) टैक्स है, अगर फिर भी हम बसूल करते चले जायें तो मैं समझता हूँ कि यह हेबिसिटी आफ़ ला (बिधि की अवहेलना) है और गवर्नमेंट हरगिज जस्टिफ़ाइड (न्याय संगत) नहीं है कि उन लोगों से एक ऐसे कानून के मातहत जो कि दुस्त नहीं है, उस के मातहत अगर कोई लाएबिलिटी (दायित्व) पैदा होती है तो मैं अज़ करता हूँ कि वह इल्लीगल इक्वैकेशन है और अनजस्टिफ़ाइड इक्वैकेशन है। एक ऐसे कानून के मातहत जो कि इल्लीगल कानून ठहराया गया है उसके मातहत लाएबिलिटी को कलेक्ट करना भेरी समझ में इनजस्टिस को परपिचुएट (अन्याय को बढ़ावा देना) करता है।

फ़िलवाक़े जब मैं ने इस आसपेक्ट (पहलु) को सोचा तो मुझे मालूम हुआ कि यह मुनासिब नहीं है कि कानून इस तरह की इजाजत दे और हम दिन बड़ा ऐसा काम करें जो कि

[पंडित ठाकूर दास भार्गव]  
 कतई नाजायज़ है। इस वास्ते में ने दो प्रमोंडमेंट (संशोधन) हाउस की खिदमत में भेजे हैं। उनमें से एक यह है कि लफ़्ज़ 'लेवीड और कलेक्टेड' (आरोपित अथवा संग्रहित) के बजाय 'लेवीड एंड कलेक्टेड' (आरोपित और संग्रहित) समझा जाये। फिर मैं ने सोचा कि इतने लफ़्ज़ इस्तेमाल करने की भी जरूरत नहीं है और इसलिए मैं ने अपने प्रमोंडमेंट पर एक प्रमोंडमेंट दिया जिसमें मैं ने यह कहा है कि जहां कहीं भी लफ़्ज़ 'लेवीड और' हों वहां से उनको हटा दिया जाये और सिर्फ लफ़्ज़ 'कलेक्टेड' रखा जाये। हालांकि मैं इसके हक में भी नहीं हूँ क्योंकि इस रुपये का रखना नाजायज़ होगा। अगर ऐसा किया गया तो इसका साइकालाजीकल (मनोवैज्ञानिक) नतीजा यह होगा कि लोग टैक्स इवेंज (कर से बचना) की बात सोचेंगे और ऐसा करने में वे अपने को जस्टीफाइड समझेंगे क्योंकि यहां पर ऐसा कानून है जिसके मातहत टैक्स बसूल नहीं हो सकता लेकिन उसके मातहत जो टैक्स लिया गया उसको दुस्त करार दिया जाता है। मैं समझता हूँ कि अगर ऐसा किया गया तो यह देश के लिए एक बड़ी भारी मिसफार्च्युन (दुर्भाग्य) होगी। हम एक इम्मारल (अनैतिक) कानून के मातहत इम्मारलिटी (अनैतिकता) को जबाज दे रहे हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि यह प्रलफ़्ज़ 'लेवीड और' खत्म कर देने चाहिए।

मुझे उस मामले में स्टेट गवर्नमेंट (राज्यसरकारों) से भी हमदर्दी नहीं है। आज जब हमारे सामने सैकिंड फाइव इमर प्लान (द्वितीय पंच वर्षीय योजना) मौजूद है, कोई शक़्स ऐसा नहीं होगा जो चाहेगा कि गवर्नमेंट के रिसोर्सेज (संसाधन) कम किये जायें। अगर गवर्नमेंट को चार पांच करोड़ रुपया ऐसे तरीके से मिलता है जो कि जायज़ है तो हर एक चाहेगा कि उस रुपये से फाईनेन्स मिनिस्टर का खज़ाना पुर हो ताकि वह फाइव इमर प्लान को अच्छी तरह से चला सकें। आज २६ फरवरी को मैं समझता हूँ कि हमारे ऊपर कई करोड़ का टैक्स ज्यादा लगाया जायेगा जो ४५० करोड़ रुपया सैकिंड फाइव इमर प्लान के लिए टैक्सों के जरिये बसूल करना तै किया गया है, आज उसकी पहली ८० या ९० करोड़ की किस्त शायद लगायी जायेगी। मैं उन टेक्सेज की सपोर्ट (अनुमोदन) करूंगा। लेकिन मैं इन तीन या चार करोड़ रुपये के टैक्स को सपोर्ट नहीं कर सकता क्यों कि यह हमारे मुल्क के स्ट्रक्चर (ढांचे) को जो कि मारल और ला पर बेस्ड (तीन चार बिधि पर आधारित)

है ठेस पहुंच जायेगा और वह स्ट्रक्चर कायम नहीं रहेगा।

कल ज्ञात मैं ने उस बहस को पढ़ा जो कि दफा २७४ ए० बी० और दफा ३०१ और ३०२ और २६४ पर गौर करते वक्त कांस्टिट्यूट प्रसेम्बली (संविधान सभा) में हुई थी। उस वक्त मैं ने दफा १६ को, जो कि फंडामेंटल राइट्स (मूलभूत अधिकार) के मुतालिक है, मजबूत करने के लिए कोई बीस प्रमोंडमेंट पेश किये थे क्योंकि मैं समझता था कि यह कानून दफा १६ के उसूल (सिद्धांत) के खिलाफ था। मैं चाहता था कि अगर हम हिन्दुस्तान को एक मुल्क बनाना चाहते हैं तो उसमें हर एक इन्सान को इंटर स्टेट ट्रेड और कामर्स (अन्तरराष्ट्रीय व्यापार और वानिज्य का हक होना चाहिए। मैं ने उस वक्त बहस के दौरान मैं कहा था कि हालत यह है कि पंजाब के ज़िले हिसार में चना ६ रुपये मन बिकता है तो वही चना मद्रास में २२ रुपये और कलकत्ते में २० रुपये मन बिकता है। मैं ने कहा था कि अगर आप इस मुल्क को एक बनाना चाहते हैं तो इस तरह की सहूलियत होनी चाहिए कि एक जगह की पैदावार और खुशाहली का दूसरे हिस्से भी फायदा उठा सकें। अब एस. आर. सी. रिपोर्ट पर बहस के दौरान मैं मालूम हुआ कि आप जोन (खंड) बनायेंगे। तो क्या आप रीजन वार (प्रदेश वार) टैक्स लगायेंगे। मैं समझता हूँ कि ऐसे टेक्स ठीक नहीं हैं। अगर एक स्टेट की पैदावार दूसरी स्टेट में जाती है तो उस पर टैक्स लगाना वाजिब नहीं है। ऐसी कार्यवाही से देश की एकता नहीं बढ़ सकती। इसी लिए मैं चाहता था कि दफा १६ एबसोल्यूट हो। उस वक्त जो नोजवान अशाखास थे जैसे श्री शिबबन लाल सक्सेना और प्रभूदयाल हिम्मतसिहा वगैरह उन्होंने मेरी बात को सपोर्ट किया लेकिन जो बड़े बड़े बुजुर्ग थे जैसे श्री टी० टी० कृष्णमाचारी और श्री अलाडी कृष्णस्वामी उन्होंने इस चीज को पसन्द नहीं किया और यह मौजूदा चीज पास हुई जो कि अब मौजूद है। लेकिन जो अब मौजूद है उस पर भी अमल नहीं हो रहा है। उस वक्त मैं ने यह अर्ज किया था :

"But in relation to these articles also my humble submission is that if the provinces are allowed to have their own way to impose restrictions upon the citizens of any other State, then this one-Nation talk, this unity and this one-Government and one-country talk will mean nothing."

मैं भ्रदब से भ्रज करना चाहता हूँ कि भ्रगर भ्राप चाहते हैं कि यह उसूल देश में कायम हो कि सारा हिन्दुस्तान एक है तो इससे बढ़कर कोई भ्रच्छी चीज नहीं है कि जो कानून भ्रापने बनाया है उस पर भ्रमल करें। जो कानून हमने बनाया था भ्रगर उसका मुकाबला हम उस कानून से करें जो कि हम इस बिल के जरिये बनाना चाहते हैं तो हम पायेंगे कि यह कानून उसके सस्त बखिलाफ है। हमने कांस्टीट्यूशन की बफा २८६ में लिखा है :

"Except in so far as Parliament may be law otherwise provide, no law of a State shall impose, or authorise the imposition of, a tax on the sale or purchase of any goods where such sale or purchase takes place in the course of inter-State trade or commerce."

जनाब वाला, इसके भ्रलावा इसमें एक भ्रावाइजो भी है जिसकी तरफ कल तबज्जह नहीं दी गयी। वह इस तरह से है:

"Provided that the President may by order direct that any tax on the sale or purchase of goods which was being lawfully levied by the Government of any State immediately before the commencement of this Constitution shall, notwithstanding that the imposition of such tax is contrary to the provisions of this clause, continue to be levied until the thirty-first day of March 1951."

कल जनाब वाला ने यह करार दे दिया कि जिस चीज को हाउस प्रास्पेक्टिवली (आबिल्य के लिये) पास कर सकता है उसको रिट्रास्पेक्टिवली (भुतलक्षी) भी पास कर सकता है। यही बात एटार्नी जनरल (महान्याय वादी) साहब ने भी फरमायी थी। हो सकता है कि यह बात दुस्त हो। लेकिन मैं भ्रदब से भ्रज करना चाहता हूँ कि भ्रगर किसी ऐक्ट की नेचर (भ्रघोनियम के प्रकार) से यह जाहिर हो कि उसके लिए यह उसूल लागू नहीं किया जा सकता तो मेरी राय में उसमें इस उसूल की केंद नहीं लगायी जानी चाहिए जैसी कि लगाने की कोशिश की जा रही है।

यह जो भ्रावाइजो (पस्तुक) है वह जाहिर करता है कि वह कानून जो कि उस वक्त मौजूद थे जब कि हमने यह भ्रावाइजो रक्खा था, उन पर इस भ्रावाइजो की रू से कुछ रेस्ट्रिक्शन (प्रतिबन्ध) लग गये। यानी ३१ मार्च, १९५१ तक यह कानून जारी रहेंगे और उस के बाद इस कानून

की रू से वह जारी नहीं रहेंगे। वह कानून 'टु वेट एक्स्टेंट रिपील' (उस सीमा तक रद्द) हो जायेंगे। मैं भ्रज करना चाहता हूँ कि भ्रगर यह दुस्त है तो कोई सबाल रिट्रास्पेक्टिव का पैदा ही नहीं होता। हमें भ्रख्यार नहीं है इस कानून की रू से कि हम किसी कानून को रिट्रास्पेक्टिव एफेक्ट दे सकें। कल कांस्टीट्यूशन की बफा २० का हवाला दिया था, लेकिन यहां मौजूद है कि इस भ्रावाइजो की रू से पहले जो कानून थे वह खत्म हो गये और जब वह खत्म हो गये तो वह वैलिडेट (मान्य) नहीं हो सकते। ३१ मार्च, १९५१ को जो चीज मौजूद नहीं थी उसे हम वैलिडेट नहीं कर सकते। और मुझे डर है कि भ्रगर यह कानून हम ने पास कर दिया तो सुप्रीम कोर्ट के अन्दर जा कर यह उसूल वैलिड नहीं करार दिया जायेगा और यह कहा जायेगा कि इस ला के हम पाबन्द नहीं हैं।

इस के भ्रलावा जैसा मैंने भ्रज किया कि जो बफा २८६ है उस के अन्दर नेचर भ्राफ प्राविजन (उपबंध का प्रकार) कुछ ऐसा है कि उस को हम रिट्रास्पेक्टिव एफेक्ट नहीं दे सकते। उस के अन्दर लिखा है कि भ्राइन्दा के बास्ते जो कानून बनेंगे, इस कानून के अन्दर तरमीम की गईं, एक वह कानून जो मौजूद थे और एक वह जो भ्राइन्दा बनेंगे। जो मौजूद थे उन के बास्ते भ्रावाइजो बना कि वह खत्म हो जायेंगे ३१ मार्च, १९५१ को और जो भ्राइन्दा बनेंगे उन के लिये यह कहा गया कि जब पार्लियामेंट (संसद) यह भ्रावाइज (उपबंध) कर दे कि स्टेट ऐसा कर सकती है तो वह ऐसा कर सकेगी। तो वह तो फ्यूचर (भविष्य) के बास्ते थे।

From the nature of the provision, it could only refer to the future; it could not by any stretch of imagination refer to the past. The liability of retrospective effect is inherently contradicted herein.

इस के अन्दर भ्रपने भ्राप दर्ज है कि रिट्रास्पेक्टिव एफेक्ट नहीं दिया जा सकता। मैं भ्रज करना चाहता हूँ कि यह उसूल क्या था। जो उसूल हमारे सुप्रीम कोर्ट ने करार दिया वह यह था कि पार्लियामेंट को introduction (निषेधाज्ञा) हटाने का हक है और भ्रगर पार्लियामेंट कानून बना देगी तो फेटर हट जायेगी और कानून बन सकेगा लेकिन भ्राप तो कहते हैं कि हम फेटर हटने का नाजायज फायदा लेंगे और जनाब फंसला भी दिया। लेकिन जहां तक कानून बनाने का सबाल, है इस पार्लियामेंट को स्टेट

[पंडित ठाकुर दास भार्गव]

के ऊपर टैक्स लगाने का या उसके बारे में कोई कानून बनाने का हक ही नहीं। तो जिन के वास्ते हमें कानून बनाने का हक नहीं है उन के मतात्मिक कानून को हम वैलिडेट करने का भी हक नहीं हो सकता। फिर इस के सिवा मैं जनाव की खिदमत में अर्ज करूंगा कि टैक्सेशन कानून के बारे में यह दर्ज है कि टैक्स के प्राविजन्स को इन फेवर आफ दि सब्जेक्ट इंटरप्रेट (विषयों के समर्थन में निर्वचन) किया जायेगा।

All things being equal, tax laws must be interpreted in favour of the subject.

तो यह एक मुसल्लमा उसूल (माना हुआ सिद्धांत) है। इस के सिवा दूसरा उसूल यह है कि जिस चीज को हम डाइरेक्टली (प्रत्यक्ष रूप में) नहीं कर सकते उस को हम इन्डाइरेक्टली (अप्रत्यक्ष रूप में) भी नहीं कर सकते। अगर हम डाइरेक्टली कोई टैक्स नहीं लगा सकते हैं तो फिर हम उस टैक्स के इन्डाइरेक्टली बसूल करने की इजाजत भी नहीं दे सकते। इस लिये किसी भी नुक्ता निगाह से जनाव गौर फरमायें, यह जो ला है उस को इस हाउस को पास (पारित) नहीं करना चाहिये। अगर इस के लिये हाउस को पास (शान्तियां) भी हो, तो भी उस को इसे नहीं पास करना चाहिये।

कल हमारे फाइनेन्स मिनिस्टर साहब ने बतलाया था कि एक वक्त था जिस वक्त, उन्होने और हमारे प्राइम मिनिस्टर साहब ने लोगों की तकालीफ को देख कर स्टेट्स को लिखा था कि इस तरह से टैक्स का बसूल करना मुनासिब नहीं है, लेकिन उस पर स्टेट्स ने क्या जवाब दिया? कई स्टेट्स ने तो कहा कि बहुत अच्छा हम आप की राय को कबूल कर लेते हैं, लेकिन कई स्टेट्स ने कहा कि हम तो सुप्रीम कोर्ट के जजमेंट को देखेंगे और टैक्स लगाते चले जायेंगे। जो शरूस जान बूझ कर चले प्राइम मिनिस्टर साहब और हमारे फाइनेन्स मिनिस्टर साहब की एडवाइस को कबूल नहीं करता, आज वही यहां पर यह चाहता है कि हम यहां पर यह पास कर दें कि वह लोग नाजायज रूपया अपने पास रखें। मैं अदब से गुजारिश करूंगा कि यह कतई जायज नहीं होगा और इस को पार्लियामेंट को हर्गिज नहीं मानना चाहिये। किसी भी इस्लीगल (अवैध) चीज को लीगलाइज (वैध बनाने) करने से सारे देश में यह चीज फैल जायेगी कि इस देश के अन्दर सिर्फ रूपया बसूल करने

का कानून है, और कोई कानून नहीं है। मैं नहीं चाहता कि थोड़ी सी रकम के वास्ते इस तरह का ख्याल लोगों के अन्दर पैदा हो। अगर आप आज १०० करोड़ रूपया टैक्स लगा दें तो वह हिन्दुस्तान खुशी से देने के लिये राजी हो जायेगा, लेकिन खुदा के वास्ते आप मुल्क के अन्दर यह साइकोलोजी (भावना) न पैदा कीजिये जिस के अन्दर लोग समझें कि गलत तरीके से टैक्स कलेक्ट (इकट्टा) करना जायज है और हमारी पार्लियामेंट एक ऐसे टैक्स पर अपनी मुहर लगा सकती है, उस के कलेक्शन की इजाजत दे सकती है, न कि कानून जो नाजायज है, जो लगाना नहीं चाहिये था, जिस के लगाने के बाद एक एक पैसा जो बसूल किया इंटरस्टेट ट्रेड या किसी भी ट्रेड से, वह देश की एकता के बखिलाफ इस्तेमाल किया गया। मैं अर्ज करूंगा कि इस टैक्स के नेचर को देखते हुए, इस की सारी वैक्यूअंड (पूठभूमि) को देखते हुए, इस चीज को देख कर कि आज के दिन हम एक काइसिस (मुसीबत) में फंसे हुए हैं, एक ऐसी चीज पर हम अपनी मुहर लगायें जिस से देश की एकता में फर्क आये, जिस के अन्दर वगैर पार्लियामेंट की मंजूरी के स्टेट अंधाधुंध टैक्स लगाये, यह मुनासिब नहीं है।

आज दो तीन बरस इसी तरह का एक प्राविजन हमारे कृष्णमाचारी साहब ने पेश किया था जिस के अन्दर जो कोई टैक्स गलत तरीके से लगा दिये गये और गलती से वह बसूल होते रहे थे, उन को लीगलाइज करने के वास्ते कहा गया था। उस वक्त भी मैं ने यही इज्जत की कि ऐसा रूपया जो टेन्टेड मनी, जो दफा २६५ के बखिलाफ है, दफा २६५ में साफ तौर पर लिखा हुआ है।

No tax shall be levied or collected except by authority of law.

अब यह प्रथारिटी आफ ला (विधि का प्रधिकार) हम बनाने चले हैं। हम जान बूझ कर ऐसा ला बना सकते हैं जो लालेस ला हो, और यहां पर उन को वैलिडेट कर देने में भी बड़ा फर्क है। लेकिन कुछ लाज ऐसे हैं, जो बाद में बन नहीं सकते हैं। उन के अन्दर कोई फेटर्स (रोक) हों, उन को हम हटा सकते हैं। ला बनने के बाद इन वैलिडेट (आमान्य) हो सकते हैं, लेकिन जो पहले के लाज (विधियां) हैं, जो कान्स्टिट्यूशन हके बजूद में आने के पहले थे वह सब के सब नान-एग्जिस्टेंट (अविद्यमान) हो गये, इस्लीगल हो

गये। अब जो चीज कायम नहीं रही, उस को बज्रद में लाने का किसी को प्रस्ताव नहीं है और यह चीज जायज नहीं होगी कि हम ऐसे फेल करें जो कि एक तरह से लीगली भ्रमन (प्रति-बन्धित) है, और भ्रमन न भी हो लेकिन जो एक्सोल्पुटली इम्मारल (नितांत धनैतिक) हैं। जहां तक इस ला का सवाल है, हमारे लिये यह मुश्किल है कि हम करार दें कि जो नाजायज ला है वह यहाँ कायम रहे। हमारे फाइनेन्स मिनिस्टर साहब फरमाते हैं कि सन् १९५३ तक यह जायज था। जब कि सुप्रीम कोर्ट ने अपना फैसला दिया। मैं अर्ज करना चाहता हूँ कि जो कुछ सन् १९५३ में किया गया वह भी गलती से किया, लेकिन जो गलती हो गई वह किसी और की नहीं हमारी गवर्नमेंट की थी। हमारे प्राइम मिनिस्टर साहब और फाइनेन्स मिनिस्टर साहब ने कहा कि आखिर अब क्या किया जाये, चाहे किसी भी बिना पर हो वह तो वसूल हो ही गया। इस के बास्ते मुझे कोई हमदर्दी नहीं है। मैं चाहता हूँ कि वह सारा रुपया गवर्नमेंट अपने खजाने से वापस करे। अगर गवर्नमेंट ईमानदारी की बात करती है तो उस के लिये यही रास्ता है। यह रुपया इल्लीगल ला के बमजिब वसूल किया गया है, ईमानदारी का नहीं है, हमें इस को अपने पास नहीं रखना चाहिये। हाँ अगर इस का वापिस करना मुश्किल है, जैसी कि दलील हमारे फाइनेन्स मिनिस्टर साहब ने दी कि यह रुपया असल भ्रामदी को नहीं जायेगा, तो उस के साथ मेरी हमदर्दी है, यह दलील कुछ बज्रन रखती है, अगर इस रुपये को आप रखना चाहते हैं तो उसे रख लें, लेकिन भ्रान्दा इस रुपये को वसूल करते जायें और टैक्स कलेक्ट करें, इस डिस्क्रिमिनेशन (पक्षपात) को मैं नहीं समझा। अगर कोई उज्र करना है कि फलां भ्रामदी तो छूट गया, मुझे पर यह रकम क्यों लगाई जा रही है, तो क्या डिस्क्रिमिनेशन का सवाल नहीं है। टैक्स वाला कहता है कि हम से क्यों डिस्क्रिमिनेशन करते हो, हम तुम को यह टैक्स क्यों दें, तो आप को चाहिये कि आप उस टैक्स को मंख कर दें। पर अगर जिन से वसूल किया गया है उस का पता न चले तो यह बात दूसरी है। लेकिन यहां पर डिस्क्रिमिनेशन का सवाल नहीं है। जिन से आप टैक्स वसूल करना चाहते हैं उन से उस कानून की बुनियाद पर टैक्स वसूल करना जिस का कोई वज्रद न हो, यह जायज नहीं है। जान बूझ कर हम उस पर अपनी मुहर नहीं लगा सकते। इस बारे में मेरी फीलिंग इतनी जबर्दस्त है कि मैं आप से अर्ज नहीं कर सकता। इस कानून के अन्दर

अगर यह अर्गमेंट (तर्क) दिया जाता है कि कोई भी भ्रामदी लायबल है तो यह इस कानून में लेकरना (कूटि) है। जब कोई लायबिलिटी (दायित्व) किसी पर रखी जाती है तो वह कानून की रू से रखी जाती है, वरना कोई लायबिलिटी किसी पर नहीं हो सकती है और सरकार कोई रुपया वसूल नहीं कर सकती है। फज्र कीजिये कि एक कम्पनी ने आप के ऊपर दावा किया दस लाख रुपये का। अदालत ने उभम दे दिया कि वह रुपया लौटा दिया जाये। ऐसी हालत में आप के बास्ते कोई रास्ता नहीं था कि आप उसे लौटाते नहीं। मैं तो फाइनेन्स मिनिस्टर साहब की बात सुन कर हैरान हो गया कि जिस शरूम ने रुपया क्लेम किया है वह झूठी शाहादात लायेगा। अगर आप समझते हैं कि वह झूठी शाहादात लाया है तो आप का फज्र है कि आप कहिये कि यह गलत है उस से कोई रकम वसूल नहीं की गई और उस को डिगरी अजाप्ति का फायदा नहीं होना चाहिये यह कहना मैं समझता हूँ कि गलत है। अगर उसके फेवर में डिगरी है तो रुपया रिफ्यूज करना ठीक नहीं है। जहां तक उस भ्रामदी का सवाल है अगर यह शकल बन जाये कि उस के हक में डिगरी हो जाये तो उस को आप से उस डिगरी के रुपये को हासिल करना चाहिये। ऐसी सूतों में आप चाहते हैं कि जजमेंट (निर्णय) की डिपी को आप अपने कानून से बेकार कर दें। लेकिन मैं नहीं चाहता कि आप सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बखिलाफ चले। मैं नहीं चाहता कि जहां यह ला कहता है कि सारे का सारा ला ३१ मार्च, १९५१ को खत्म होगा, वहां पहली अप्रैल को वह दिखाई दे और कायम रहे। हम ना उस को बिगाड़ सकते हैं और न वैलिडेट कर सकते हैं। इस ला को वैलिडेट करना कांस्टिट्यूशन (संविधान) के खिलाफ होगा। मैं नहीं समझता कि कांस्टिट्यूशन के बखिलाफ कोई कानून लागू रह सकता है। नतीजा यह होगा कि अगर हम यह पास करेंगे कि यह कानून कायम रहे तो हमारे ऊपर यह इल्जाम होगा कि हम ने आख खोल कर ऐसा फैसला किया जिस को हमें नहीं करना चाहिये था। मैं निहायत अदब से अर्ज करना चाहता हूँ कि हाउस इम को माने या न माने, जितना क्लेम (दावे) का ऐमाउंट (राशी) है उसे वापस देना मुनासिब समझे या न समझे, अगर नहीं समझता तो वापस न दे, लेकिन हाउस हगिख हगिख इस बात की पार्टी न बने कि कांस्टिट्यूशन के बखिलाफ भी इस कानून को जायज करार दे और जो फिलबाक्या जायज नहीं है उसे पर अपनी मंजूरी की मुहर

[पंडित ठाकूर दास भार्गव]

लगा दे । जो उसूल यहाँ पर रक्खा जा रहा है मैं उस की सख्त मुखालिफत करता हूँ ।

**Shri C. D. Pande** (Naini Tal Distt. cum Almora Distt.—South-West cum Bareilly Distt.—North) : I listened yesterday with great attention and respect to the learned and lucid exposition of law by Mr. Setalvad. I think this Parliament has the competence and the power to legislate a measure of this nature. No lawyer of his importance and eminence was required to prove that. Every Member here knows that this House has the power to pass a Bill of this nature.

**An Hon. Member:** Contradictory nature.

**Shri C. D. Pande:** But that is not important. There is something which is more important to consider while deciding whether it should be taken up or not. According to the petty, legal quibblings, it may be correct to do so. We should see from the moral standard whether it is desirable to do so.

In every democratic set-up, judiciary has a place. I am not concerned with the refund of the money or with the harassment. (*Interruptions*) I am only concerned with the place of the judiciary in our country. Are we justified in nullifying the judgment of the Supreme Court? Is it in consonance with the principles of democracy?

**An Hon. Member:** Have we not done so on so many occasions?

**Shri C. D. Pande:** There have been occasions and there have been cases where the pronouncements of the Supreme Court were nullified by Acts of Parliament. Every time I raised my voice that it was not proper; we should not wantonly use that power that way so that the aggrieved party who went to the highest authority in the land got a judgment which was later on nullified.

**The Minister of Finance (Shri C. D. Deshmukh):** Is it parliamentary to say that Parliament makes 'wanton' use of this power?

**Shri V. G. Deshapnde (Guna):** We ourselves are saying it; it is not against any other body or any particular individual.

**Shri C. D. Pande:** My point is only this. If you want to maintain the dignity of the judiciary of this country, let there be fewer such occasions when we may have to nullify their judgments.

**Shri K. C. Sodhia (Sagar):** What about the contradictory judgments of the Supreme Court?

**Shri C. D. Pande:** The latest judgment is in question. This House had done it many a time!

**Mr. Deputy-Speaker:** I am not interested in the general discussion. I am only here to hear. But so far as the judgment of the Supreme Court is concerned, let no wrong impression be created. It was held yesterday that the judgment was not on all fours here. The matter was decided that without the Parliament enacting a law empowering a State to impose this tax, the tax could not be levied or collected. Yesterday it was argued that retrospective effect could not be given. Now, that is not the point that came up for decision there. This point is not covered by the judgment of the Supreme Court. But there are cases where the Supreme Court itself says that under the law as it exists certain things cannot be done. The Supreme Court has not said that Parliament ought not to pass such a law. Under those circumstances, it is not necessary to say that Parliament wantonly does this or that. It would never do such things 'wantonly'. It has always got regard and respect for the judgment of the Supreme Court. It is bound to do so. Due to some inadvertence or without addressing oneself to the articles of the Constitution, a tax was levied. But it could have been validated if Parliament had passed a law earlier; if earlier Parliament had passed a law, it would have been valid. I just want to avoid any impression being created either by any act that is done here or by any speech of any hon. Member here, that there is any intention on the part of Parliament to override or at any rate to do anything in conflict with the judgments or which might be disrespectful to the judgments of the Supreme Court.

**Shri Bansal (Jhajjar-Rewari):** May I say that the Supreme Court itself has suggested that Parliament should pass a law in order to give retrospective effect—there is such an understanding. That understanding, in my view, is not correct.

**Mr. Deputy-Speaker:** Order, order. It is not as if it is the business of the Supreme Court to say what kind of legislation we have to pass here. All that I said was this. The Supreme Court had not decided the issue as to whether it is competent or legal or illegal under the constitution to give retrospective effect to



such a legislation. If this matter arose there and the Supreme Court had said that no such law could be passed retrospectively as the Constitution stands at present, then certainly they would not have brought this law and we could not pass such a law.

**The Minister of Legal Affairs (Shri Pataskar):** Not only that. For the information of the hon. Members I might state that this was brought to the notice of the Supreme Court and they did take into account that it might result in upsetting the economy of the States to that extent. The second paragraph on page 682 will clearly bear that out. It reads :

"It is pointed out that all the States are realising sales-tax in respect of sales or purchases of goods where the goods are actually delivered for consumption within their respective boundaries on the faith of our previous decision and a reversal of that decision will upset the economy of the States and will indeed render them liable to refund moneys already collected by them as taxes. This circumstance, it is pressed upon us, should alone deter us from differing from the previous decision. We are not impressed by this argument. It has not yet been decided by this Court that moneys paid under a mutual mistake of law induced by a wrong judicial interpretation of a statute or the Constitution must necessarily be refundable as money had and received. If, as contended, moneys so paid are in law refundable the States cannot complain any more than a private individual in similar circumstances could do. Finally, if the State economy is upset the appeal must be made to Parliament which under Article 286 (2) itself has ample power to make suitable legislation."

And that is what is being done here.

**Shri U. M. Trivedi:** Suitable legislation is legislation to remove the fetter and not giving retrospective effect.

**Shri C. D. Pande:** Let there be no impression in the minds of the public that this Parliament is going to derogate the authority of the Supreme Court. We should not bring before this House measures which upset the judgments of the Supreme Court. There has been at least four or five cases in which with all the good motives we had to legislate

and that offended to a great extent the susceptibilities of the Supreme Court. There was the case of compensation; there was then the case of some investigation commission.

**Shri S. V. Ramaswamy (Salem):** Is the sovereignty of the Parliament conditioned by the feelings of the Supreme Court?

**Shri C. D. Pande:** That is true. But the legislative wing of the Constitution is as important as the judiciary. After all, the Supreme Court is our creation. But, that creation has to be respected because democracy imposes certain restrictions on our liberties. Of course, we can pass any law. I was going to tell you that we can pass any legislation. We can amend the Constitution. We can abolish the Supreme Court itself. We have got that power, but we will be . . .

**Mr. Deputy-Speaker:** Order, order. It is unnecessary to drag the Supreme Court here. It is not as if we are doing anything in which the Supreme Court is interested. The Supreme Court has only said that for want of previous sanction of the Parliament, for want of a law passed by the Parliament, the law passed by the State is illegal and therefore no levy could be made. We are passing that law. It was also said that there are powers under article 286 (2). Therefore there is no good again and again trying to make it appear as if there is conflict between the Parliament and the Supreme Court and we are trying to do this to upset the judgment and all that. Hon. Members may address themselves to the propriety of this Bill. Pandit Thakur Das Bhargava pointed out that inter-State commerce and trade should be free. If the House can take an exception under article 286 (2) then the Parliament itself takes power to decide that matter. In that case inter-State trade and commerce need not be free. Now, it is a matter for the House to decide on these issues of policy as to whether on this particular matter we ought to just validate it or not. There is no good dragging the Supreme Court as if we are doing something contrary to their decision.

**Shri C. D. Pande:** What I was going to tell the House was, when a citizen of India feels or a combination of citizens of India feel aggrieved they go to a court of law and then to the highest court of law. There they get a judgment. That judgment somehow or other we find is inconvenient for us. So, whether it is desirable under the law to take a

[Shri C. D. Pande]

recourse to this method is the only thing I wanted to point out. It is up to the judgment of Parliament to decide whether we should go on amending the Constitution off and on and whether we should go on making legislation that upsets the judgment of the Supreme Court. I think it is not a desirable practice. In future at least we should give more consideration to all such measures of legislation where judgments of courts are involved.

**Shri S. V. Ramaswamy:** Mr. Deputy-Speaker, I whole-heartedly support this measure. The previous speaker and the speakers who preceded him and spoke on those lines, evidently were suffering under a conflict of thoughts. The point simply is this. What is it that the Supreme Court did? They gave a decision on the existing law. They merely said that this collection is wrong and it is not in conformity with the law. They said that there ought to have been a prior legislation by Parliament to authorise this collection. That is all what the Supreme Court said. My friend Shri C. D. Pande says that we must accept that. Does the hon. Member mean thereby that it is only then that we will be paying respect to the Supreme Court? No. The question of dignity or offence of the Supreme Court does not arise at all, nor are we upsetting the decision of the Supreme Court. As a matter of fact, we are respecting the decision of the Supreme Court and bringing the law in conformity to their decision. We are doing nothing more. What else are we here for? What else is the sovereignty of the Parliament for except to rectify the mistakes? To err is human. Something has gone wrong. Some collection of taxes has been made which is not legal. Now, it is for us to review the position and see what can be done.

There are two points, the question of legality and the question of practical difficulty which this Parliament is bound to attend to. The question of legality is this. Article 286 (2) has been read out so often, but I will also just read a small portion :—

“Except in so far as Parliament may by law otherwise provide, no law of a State shall impose, or authorise the imposition of, a tax... and so on.”

The main point which the Opposition and some hon. Members on this side have urged is that there has been no prior law, there has been collection

made and therefore we are not going to validate an illegal collection. Now, it is not merely by strictly legal things that we must go but we must put commonsense interpretation also. If the Parliament is empowered to enact a law to authorise any State to collect a tax it can very reasonably be interpreted to mean that this Parliament also has power to validate what has been illegally collected. There are no restrictions upon the powers of the Parliament. The question then is the question of propriety; is it moral or is it immoral. The tax has been illegally collected. Why should the Parliament validate an illegal collection? It is here that the question of practical difficulty comes. Collections have been made and thanks to the decision of 1953 in the *United Motors Case* the country has been thrown into utter confusion. People have been called upon not merely to submit the returns for that particular year but they are called upon to give returns for 1950-51 which they have lost sight of. Each State had its own different method of taxation. Each State had its own form.

**Shri T. S. A. Chettiar** (Tiruppur): Why did not the Parliament take it up before?

**Shri S. V. Ramaswamy:** I shall come to that. These were the difficulties that had arisen. Now, my friend says that we must respect the decision of the Supreme Court. Are we to respect the decision of 1953 or 1955? In two years they have changed fronts.

**Shri Nand Lal Sharma** (Sikar): The latter decision.

**Shri S. V. Ramaswamy:** True. But, before the decision of 1955 was given, you would have said that we must respect the decision of 1953. So, the difficulty arises and we must as practical men here solve the difficulty that has arisen by legislating in the sovereign Parliament. They have levied the taxes rightly or wrongly. They have collected the taxes. How is that to be redistributed? Some hon. Members said: let us redistribute the amount. To whom are we to redistribute it? How can it be done? What will be the effect of it on the finances of the States? These are the practical considerations on which we must bestow our thought and bring to bear out commonsense on this issue. We should not look at it from a merely legalistic point of view. About Rs. 4 crores or Rs. 5 crores of money have been collected. So many States have budgeted on the basis that they will be

entitled to have this sum. Now, if you suddenly say that they should return the money are you going to upset the budgets of those States? You may say it is immoral. True. It may be moral or immoral. It has been collected rightly or wrongly. But, it has been taken into account in the budgets that have been prepared in some States. Certain plans and other things have been framed on that basis. Now, if you ask them to return the money because the Supreme Court passed a judgment what are the practical consequences? You must take into account the practical consequences. It would be difficult to trace the parties to whom it is rightfully due. You will be returning the money to those people, if at all you trace them, from whom you directly collected the money, namely the merchants and middle-men. Are you going to return the money to them? If you do so it would be immoral again to return to them the money you have collected. They are not the persons who paid the taxes out of their pockets. They collected it from several purchasers. Are you going to trace every purchaser and give one anna or two annas? These are the practical difficulties and it is to solve those difficulties that this legislation has been brought.

From a legal point of view it is quite clear that this Parliament has got power because if it can authorise a State it can as well validate an invalid Act, an illegal collection. With regard to the question of practical difficulties I am sure there can be no two opinions that it would be impossible to return this money. It will have very adverse consequences on the budgets of some States. It is because of these considerations that this Bill has been brought. There is no question of conflict with the Supreme Court or offending the dignity of the Supreme Court. We are only respecting it. They have pointed out an illegality. They have not said that we do not have the power to validate the Act. In fact, it would not be within the jurisdiction even of the Supreme Court to say that it is not within our power to give retrospective effect. If they would have indicated that in their judgment then it would have been wrong; it would have been an infringement on the sovereignty of the Parliament. They have carefully said that the collection of taxes is illegal. They have stopped there and have said nothing more. It is up to us to calculate and find out the consequences of the decision.

Now, supposing, after the Sholapur case we had kept quiet. They have

given a decision as to what compensation means. Supposing, in order to respect the Supreme Court, we merely abided by their definition of compensation, namely, that it should be the market value, where would all our schemes of development go? Where would all our schemes for the establishment of a welfare State go? They will all flounder on the rock of the decision. That is the consequence. It is the consequence that we must look into. The judges are not concerned with the consequences of a decision. Judges are there only to show the point of law, to show what is law, what is legal and what is illegal. They are not concerned with the consequences of the decision. We are concerned with the consequences as a Government. We are dealing with the consequences that will ensue from a decision of the Supreme Court. If we keep quiet with the Sholapur case, I am sure we can scrap the Five Year Plan, because we have not got money to pay according to market value, by way of compensation. That is why we came to this House for amending the Constitution. It is not, as Shri C. D. Pande said: "You are upsetting the judgment of the Supreme Court. They have resented it. This is an inroad upon the Supreme Court. This is an undignified affront to the Supreme Court." All this argument is irrelevant. They do not arise at all. The Supreme Court has pointed out the legality or illegality of a particular thing. Certain consequences flow from the decision. If we do not take note of those consequences and rectify and devise means for getting over those consequences we shall flounder and we shall never carry on with the Government. Here is where the sovereignty of Parliament comes and it is within the jurisdiction of this Parliament to rectify, and to meet the consequences of a judicial decision, and see that the law is brought into conformity with the realities so that the Supreme Court may not then say that the law is not illegal. Hereafter, it would not be possible for the Supreme Court to say that this is illegal, if by any chance, any case is taken to the Supreme Court on this issue. Anyway, there is time enough to consider it.

The practical difficulty seems to be that several parties have issued notices to Government to refund the amount. It might, of course, benefit many lawyers. Court-fees may come in, and the States can increase their revenue. But what are the consequences? Hundreds of thousands of such cases will come up

[Shri S. V. Ramaswamy]

all over the country. It is an unimaginable difficulty. The Governments of the States will have to face all this private litigation. How they will do it, I do not know. Decisions then will vary from State to State and from court to court. There will be a medley of decisions.

**Mr. Deputy-Speaker:** Please finish soon.

**Shri S. V. Ramaswamy:** I will take only one more point before I finish. I will take this opportunity of voicing the feelings of merchants who pass through an agony as a consequence of the 1953 decision of the Supreme Court. They have been subjected to utmost difficulties as each State is calling for records in a different manner and almost simultaneously. I do not wish to talk upon the legislation, in anticipation, which the hon. Finance Minister said he would introduce. All that I wish to say is, in bringing forward a legislation, there should be circumspection. The interests of the merchants must be taken note of. They are not to be bullied. They are as much our citizens as anybody else.

**Mr. Deputy-Speaker:** You are going away from the point. This is not an occasion for a general discussion of what a sales-tax ought to be and whether there should be a central authority, etc. The hon. Member will have an opportunity later on.

**Shri S. V. Ramaswamy:** What I submit is this: when we bring forward such a measure, I hope that the authorities will pay the utmost consideration to the difficulties that are being experienced by the merchants and see that while collecting the taxes, the merchants are not subjected to difficulties.

**Mr. Deputy-Speaker:** I now call upon Shri C. C. Shah to speak. Hon. Members will be short. We will have to close the debate by 1.15.

**Shri U. M. Trivedi:** Yesterday, it was said that we would be sitting more time for this Bill. There are many more Members to speak.

**Mr. Deputy-Speaker:** There is nothing more to be said. Money has been collected and appropriated. How it can be refunded is a practical difficulty.

**Pandit Thakur Das Bhargava:** Further collection should be stopped.

**Mr. Deputy-Speaker:** I think there is a period fixed here, after which time there will be no collection.

**Shri N. R. Muntswamy (Wandiwash):** Will the hon. Minister give an assurance that the sale-tax on inter State trade will not be collected after 6th September, 1955 by any State?

**Shri C. D. Deshmukh:** I shall deal with it in my reply.

**Mr. Deputy-Speaker:** All right. Shri C. C. Shah will speak now.

**Shri C. C. Shah (Gohilwad-Sorath):** This Bill has a limited purpose, limited in the sense that it seeks to meet a situation that has arisen out of the recent judgment of the Supreme Court. The objection to this Bill is on two grounds, namely, that of legality and of propriety. So far as legality is concerned, I have no doubt, and I respectfully agree, that this Parliament has competence to pass this legislation. The question is only of propriety—whether it is proper for Parliament to exercise its undoubted jurisdiction to pass a legislation of this character. The issue boils down to this: that it is a retrospective piece of legislation and particularly when it concerns a taxation measure, whether it is right and proper for this House to pass a retrospective measure for a tax which is already declared to be illegal. Generally speaking, I should say that retrospective legislation is undesirable. Unless we are driven to it, or a situation has arisen which cannot otherwise be remedied, we should not resort to a retrospective legislation. Therefore, my submission briefly is that whether a case has been made out for a retrospective Act of this nature. That we have a right to pass a retrospective legislation is undisputed. The only issue is—and we have done so previously under article 31B of the Constitution—has a case been made out to pass a retrospective legislation of this nature. There I would dispose of one argument. There is no question of any disrespect to the Supreme Court. Any argument based upon this, namely, that it is a disrespect to the Supreme Court to pass a legislation of this nature is entirely based on a misconception of the functions of the legislature and of a court. Therefore, I submit that that argument has no validity.

Now, what is the position? Article 286 is not an article which permits the imposition of sales-tax. It merely imposes restrictions on the imposition of sales-tax by the States. It imposes four

restrictions. The first restriction is that it should not be a sale which has taken place outside the State. The second restriction is that it should not be a sale in the course of import or export. The third restriction is that it should not be a sale or purchase in the course of inter-State trade or commerce. The fourth restriction is in respect of essential commodities. We are concerned principally with inter-State sales tax at present. What was the position as regards inter-State sales? Under article 301 of the Constitution, subject to the other provisions of Part XIII, inter-State trade and commerce shall be free. That was what we have put down in the Constitution, but we also agreed that in certain circumstances it may be permissible to a State to levy a tax on an inter-State sale. But it can be done only if the Parliament permitted it and to the extent to which Parliament permitted it, and not otherwise. In the proviso under article 286 (2), in order to meet a situation that we may not pass such a law immediately, we provided that the President may issue an order which would be valid until 31st March, 1951 to validate the existing laws which enabled the States to levy a tax on inter-State sales and purchases. Therefore, it was clear that after 31st March, 1951, if there was no law passed by Parliament, no State could make a law imposing a tax or authorising the imposition of a tax on a sale or purchase which was of an inter-State character. That was what Parliament wanted. After 31st March, 1951, Parliament has not passed any law which authorises the imposition of a tax on inter-State sales.

1 P.M.

Therefore, this Parliament by implication did not consider it necessary to authorise any State to pass a law which permitted a tax on inter-State sales and purchases. Therefore, this much is clear that from 1st April, 1951 no State can pass a law which permitted a tax on inter-State sales and purchases, or, if there was any such law it was bad and Parliament did not think it necessary to pass any legislation, nor did any State request the Parliament to pass any such legislation.

**Pandit Thakur Das Bhargava:** Perhaps no tax was recovered in respect of such sales.

**Shri C. C. Shah:** I am coming to that. Therefore, from 1st April 1951 no State thought of levying a tax on inter-State sales and purchases and no State

could possibly have had a law which permitted the levy of such a sales-tax.

Now in 1953 there came a Supreme Court judgment which, it is said, permitted such a tax. What exactly was the Supreme Court judgment? Let us understand the judgment of 1953. That judgment did not and could not possibly have authorised a tax by a State on inter-State sales and purchases; it could not possibly have done so, because it would be contrary to the express provisions of article 286. All that that judgment said was this: in interpreting the explanation to sub-clause (1), it said, that if the delivery took place in another place, then the receiving State was entitled to treat it as a sale within its boundary. But it did not say that inter-State sales and purchases can be taxed by any State. That was not the meaning of that judgment at all.

Now what does the Supreme Court in its recent judgment say? All that it was that the interpretation which the Supreme Court put previously was wrong, and the receiving State cannot tax a sale in which the delivery has taken place within that State. After the 1953 judgment all States which were until then not collecting any tax on sales which had taken place outside the State, but where the delivery took place within the State began to collect taxes. Therefore, by implication from 1st April, 1951 until the Supreme Court judgment, no State thought of collecting any tax on sales which took place outside its territory, but where the delivery took place within its territory. I take it therefore that there was no collection of any tax by such States until the Supreme Court judgment.

**Shri C. D. Deshmukh:** That is not correct. There were a few cases.

**Shri C. C. Shah:** It would not be of an inter-State character.

**Shri C. D. Deshmukh:** That was the point in issue throughout. It was never clear to anybody what was an inter-State transaction and what was not and how to differentiate either kind of sale which is inside or outside a State from an inter-State transaction. The same transaction could be regarded in one way or the other, but the transaction was there.

**Shri C. C. Shah:** I agree, the two are of an overlapping character. What is an inter-State sale can also be said to be an intra-State sale, but in most of

[Shri C. D. Pande]

the cases, as far as I know, from 1st April, 1951 until the judgment of the Supreme Court in the United Motors case, very few States thought of collecting tax on sales and purchases which took place outside their territories. The Supreme Court judgment only said that such sales must be deemed to be sales which have taken place within that territory, if delivery took place within that place.

**Shri C. D. Deshmukh:** What happened was that many States were encouraged to bring within their sales-tax laws a large number of transactions on the fiction that they came under that explanation and therefore validated by that judgment.

**Shri C. C. Shah:** I entirely agree. But what did we think of the judgment? What did the mercantile community think of the judgment? What did Government think of the judgment? The mercantile community was put to any degree of harassment. Government itself thought that that judgment created great hardships and therefore requested many of the States—the Prime Minister himself appealed to the States—not to implement that decision and not to impose that tax. Now the Supreme Court has corrected its own judgment; the Supreme Court has seen what I may call the justice of the grievances of the mercantile community resulting from the United Motors case and, therefore, has reversed that judgment. They have done what we thought was the right thing to do, namely, not to put the merchants to harassment.

What is it that we are doing by this measure? We are exactly validating the United Motors case. Not only are we validating the United Motors case, we are validating all laws which impose inter-State sales tax. This goes much wider than the United Motors case ever did. The United Motors case could never have validated or permitted tax on inter-State sales. All that it said was that a sale where delivery took place within another State, though it partook the character of an inter-State sale was exempted by the explanation. But it was of a very limited character. Now by this Act we are validating and authorising all States to levy taxes on inter-State sales. Therefore, my submission is that this Act goes much beyond even the necessity of the situation. All that we need today do is that where the States are levying taxes by reason of the United Motors case only and no

more, that may be validated. But what we are validating is any law of a State imposing or authorising the imposition of a tax which partakes of a character of an inter-State sale, which really means that what we did not do from 1st April 1951 till today, what we did not think it necessary to do under sub-clause (2) we are doing today merely because the Supreme Court judgment has rectified its own error. Supposing a State today passes a law that for the period from 1st April 1951 to 6th September 1955

**Mr. Deputy-Speaker:** My feeling is that this matter was disposed of yesterday.

**Shri C. C. Shah:** I am only considering the implications of this Act; I am not disputing the validity of this Act. I concede it is competent for this House to pass this Act.

**Mr. Deputy-Speaker:** It is only a question of validating the levy and collection of the tax during a particular period. Yesterday a wider matter was disposed of. The only point for consideration now is whether we ought to do it, or not. That is a matter of policy. The hon. Minister has never said that this is a law for all time. Even if the tax collected were to be returned, the benefit would not go to the consumer.

**Shri C. C. Shah:** This Act goes much farther than what the situation requires.

**Mr. Deputy-Speaker:** Not only the situation in Bihar but in other States also. The hon. Member must conclude now; he need not go into the general question of law once again.

**Shri C. C. Shah:** I am not going into that.

What I am submitting is: has the Government made out a case in order to enable us to pass a law of this character? Some States have collected taxes after the United Motors case until today. In order to obviate the difficulty of refunding such amounts is it necessary to pass a law which is so wide as this? Now, supposing, for example, a State passes a law today imposing a tax on all inter-State sales for the period from 1st April, 1951 to 6th September, 1955? Such a law, even if it is passed today, would be valid under this Act. Therefore, my submission is that this Act should have been restricted in a much greater degree.

No doubt, I realise the difficulties of the Government. The difficulties of the

Government may be that it has to refund to a large number of dealers and it may upset its economy. But that by itself would not be sufficient ground for passing this Bill. But what I feel is that if the dealers have collected taxes from a large number of consumers, it is not fair that the dealers themselves should be permitted to retain the amounts which they have collected. That is the point which makes me support this Bill. But in doing that, is it necessary for us to give a wide scope to all the States to pass laws imposing taxes on inter-State transactions? What was said in the *United Motors case* was, "wherever delivery has taken place in your State, you can tax it". The *United Motors case* did not allow all the States to tax all the inter-State transactions. My submission is that the Government may reconsider this matter. This Bill goes much farther than what we ever contemplated. What we did not do for five years, we are doing today on the ground that the Supreme Court has given a judgment which merely corrects its own previous judgment. I request the Government to reconsider the matter.

**Mr. Deputy-Speaker:** Does the hon. Finance Minister want to say anything before I call another hon. Member?

**Shri C. D. Deshmukh:** I would only say that if the hon. Member is worried about existing laws and future laws, he should have given notice of an amendment saying that "no existing law of a State" etc. shall be invalidated. It is for him to consider and suggest a suitable amendment. That is all.

**Mr. Deputy-Speaker:** The period has been restricted from 1951 to 1955. That is sufficient.

**Shri C. D. Deshmukh:** If he thinks that a State may, on the force of this Act, tomorrow have a retrospective amendment of the same law that we are validating now.

**Mr. Deputy-Speaker:** How can they collect the tax now?

**Shri C. D. Deshmukh:** In my view they cannot, but if he wants, he may suggest an amendment.

**Pandit Thakur Das Bhargava:** Mr. Deputy-Speaker, while you were absent yesterday, I put the question to the hon. Finance Minister whether the effect of this Bill will be that further collections will be legal. He said, "yes, we propose to collect them".

**Shri C. D. Deshmukh:** I am not talking of collections under the existing law. The point raised by the hon. Member is a fresh point. He seems to think that as soon as we pass this law, it will be open to any State to amend its law, add other varieties of goods to it and regard that as a valid tax under article 286 (2). I suggest that that cannot be. But, if he wanted to urge that point, he could have put in an amendment inserting the words "no existing law". Nobody is interested in a State passing future laws under the guise of this Bill.

**Shri C. C. Shah:** My point is this. All inter-State sales and purchases are covered by this Bill. What the *United Motors case* permitted was to tax sales where the delivery had taken place within that area. What this law permits is taxing all inter-State transactions, sales and purchases. This is wider than what the case permitted.

**Pandit Thakur Das Bhargava:** If we all agree that future collections must be stopped, it is all right.

**श्री झुनझुनवाला (भागलपुर-मध्य) :** उपाध्यक्ष महोदय, जो बात अभी हमारे मित्र शाह साहब ने बतलाई है यह हमें भी दिक्कर रही थी। मैं तो यह समझता हूँ कि जिस प्रकार का ला बनाया जा रहा है उससे किसी भी स्टेट को यह भ्रस्तियार हो जाता है कि वह भी कोई ला बना ले और उसको रिट्रोस्पेक्टिव इफेक्ट (भुतलक्षी प्रभाव) दे दे। जहाँ पर कभी टेक्स नहीं लिया जाता था, कभी कोलेक्ट (कटठर) नहीं किया जाता था, कभी प्रसेस नहीं किया जाता था वहाँ की गवर्नमेंट को भी अब यह भ्रस्तियार हो जाएगा कि वह भी इस ला के मुताबिक एक नया ला बना ले और उसको रिट्रोस्पेक्टिव इफेक्ट दे दे और कोलेक्ट करना और प्रसेस करना शुरू कर दे। इस से कितने लोगों को हैरानी होगी, कितनी तकलीफ उसको होगी, इस खींच को आप समझ सकते हैं।

**श्री सत्येन्द्र नारायण सिंह (गया-पश्चिम) :** क्या ऐसा हो सकता है कि जहाँ पर यह पहले ही से एग्जिस्ट (विद्यमान) न करता हो वहाँ पर भी इसे पहले से ही इफेक्ट दे दिया जाए ?

**श्री झुनझुनवाला :** इस में लिखा हुआ है कि इस पीरियड के लिए ला बन सकता है और इस के मुताबिक वह स्टेट ला बना सकती है। अगर इस पीरियड के लिए ला बनाया जा सकता है तो इस पीरियड में जितनी भी ट्रंसकॉर्ष

[श्री ज़ुनज़ुनवाला]  
 (सौदे) हुई है वह सब वैलिड (मान्य) समझी जायेंगी और उन पर टेक्स लिया जा सकेगा। यदि यह बात ठीक है, हमारे फाइनेंस मिनिस्टर साहब तो कहते हैं कि यह ठीक नहीं है, लेकिन अगर ठीक है मैं समझता हूँ कि अगर इसको ठीक कर लिया जाए तो अच्छा है। मैं इसमें कोई एतराज की बात नहीं समझता क्योंकि शाह साहब ने या किसी और मੈम्बर ने इस बारे में प्रमोडमेंट नहीं दी। इस लिए इसको माना नहीं जा सकता है। इस लिए मैं गवर्नमेंट से प्रार्थना करूंगा कि वह इस विषय में सोच ले और जो ठीक समझे वही करे, नहीं तो लोगों को बहुत हैरानी होगी और उनको बहुत सी दिक्कतों का सामना करना पड़ेगा। जो इंटर स्टेट ट्रांसेक्शंस हैं उनके ऊपर अगर यह सब चीजें लागू हो जायेंगी तो इसका उन पर क्या असर पड़ेगा। कल जितनी भी बातें हुईं उनसे गवर्नमेंट का अभिप्राय, गवर्नमेंट की इंटेंशनस क्लीयर (इच्छाए स्पष्ट) नहीं हुई। अगर गवर्नमेंट की यह इंटेंशन नहीं है लेकिन यह चीज बिल से साबित होती है तो वैसी हालत में मैं प्रार्थना करता हूँ कि आवश्यक सुधार करके इस बिल को पास करना चाहिये।

**Shri K. C. Sodhia:** I will read one sentence from the Statement of Objects and Reasons :

"Pending such amendment of the Constitution, it is not considered desirable to validate the existing State laws prospectively but it became necessary to take immediate steps to validate the levy and collection of such taxes between 1st April, 1951 and 6th September, 1955."

This makes it clear that no further collections can be made under the existing State laws beyond 6th September, 1955.

**श्री ज़ुनज़ुनवाला :** हमारे मित्र ने स्टेटमेंट आफ प्रापोजेक्टस (उद्देश्य और कारणों के विवरण) को पढ़ा है परन्तु यह तो ला नहीं है। जब यह ला बन जाएगा तो अगर कोई मामला कोर्ट में जाएगा तो कोई स्टेटमेंट आफ प्रापोजेक्टस को नहीं पढ़ेगा। वहां पर जो कुछ इस ला में लिखा हुआ है और जो इसके बर्डिंग (शब्द) हैं उनको ही पढ़ा जाएगा।

**Mr. Deputy-Speaker:** The wording in the Bill also is like that :

"a tax on the sale or purchase of any goods where such sale

or purchase took place in the course of inter-State trade or commerce during the period between the 1st day of April, 1951 and the 6th day of September, 1955...."

**Shri Jhunjunwala:** It is mentioned here :

"...no law of a State imposing or authorising the imposition of, a tax on the sale or purchase of any goods in the course of inter-State trade or commerce...."

**Mr. Deputy-Speaker:** Why does the hon. Member omit the words, "during that period"? Whatever the law may be, that law will be validated to this extent, namely, that the collection of tax during that period is validated. "During that period" does not stand separately.

**श्री ज़ुनज़ुनवाला :** मैंने अपने दो एक आदमियों से सलाह की है और उन्होंने भी वही बात कही है जो शाह साहब ने कही है और उन्होंने मुझे बतलाया है कि इसका यह अर्थ निकल सकता है। मैं तो कोई लायर (वकील) नहीं हूँ। लेकिन मैं कहता हूँ कि जो बातें शाह साहब ने बताई हैं उनका अगर यह अर्थ निकल सकता है तो ऐसी हालत में गवर्नमेंट को इस चीज को अच्छी तरह से देख लेना चाहिए ताकि इसके ऊपर फिर झगड़ा न हो।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूँ वह यह है कि कल यह तय हो चुका है कि यह जो ला है यह सुप्रीम कोर्ट में जा कर नल एण्ड वायड (शून्य) हो जाएगा। मैं इसके बारे में कुछ ज्यादा नहीं कहना चाहता लेकिन प्रार्थना करता हूँ कि गवर्नमेंट इस पर भी विचार कर ले।

तीसरी बात जो मैं कहना चाहता हूँ वह यह है कि कोई व्यक्ति, यदि वह किसी कानून के खिलाफ काम करे तो कोई भी ऐसी चीज नहीं है जो कि उसको बचा सके। लेकिन यदि स्टेट कोई ऐसा काम करे जिसके बारे में कि उसको काफी अख्तियारात है और प्रेजीडेंट को और पार्लियामेंट को भी अख्तियार है और इस तरह की छोटी छोटी बातों में कानून के खिलाफ जाय तो इसका नैतिक इफेक्ट (प्रभाव) क्या होगा लोगों के ऊपर और स्वयं स्टेट के ऊपर, इसका अंदाजा आप स्वयं लगा सकते हैं। इस तरह के गैर कानूनी काम करना, मरे विचार में, स्टेट को शोभा नहीं देते हैं।

हमारे पंडित ठाकुर दास भार्गव जी ने एक एमडमेंट दिया है जो कि लेवीड और कोलेक्टड (लगाये और इकट्ठा किये गये) के बारे में है।



जो रकम वसूल हो गई है उसके बारे में तो यह कहा जा सकता है कि साहब इसको वापस करने में बड़ी दिककत होगी। परन्तु लेवी (लगान)के बारे में ऐसा नहीं होना चाहिए। जो वसूल नहीं हुआ है वह प्रागे वसूल नहीं किया जाना चाहिए।

श्री के०सी० साधिया : वसूल तो हो चुका है।

Mr. Deputy-Speaker: Order, order. He has had his say. Let the hon'ble Member go on.

श्री सुनसुनबाला : मैं यह जानता हूँ कि जो सुप्रीम कोर्ट का दूसरा जजमेंट (निरणय) सन् १९५५ में हुआ उसके बाद बहुत से व्यापारियों ने सोचा कि जो टैक्स वे कलेक्ट कर रहे थे वह वे नहीं कर सकते थे। इसलिए उन्होंने उसको वापस कर दिया। अब प्रागे उन से वही टैक्स मांगा जायेगा जिसको कि उन्होंने वापस कर दिया है। इस प्रकार के बहुत से केंसेज (मामले) हमारे सामने आये हैं और उनकी जानकारी हम को है। इसलिए मैं सरकार से निवेदन करूंगा कि जो कुछ वसूल हो गया है वह तो ठीक है परन्तु जो वसूल नहीं हुआ है उसे वसूल नहीं करना चाहिए। जो मर्नेडमेंट ठाकुरदास जी भार्गव ने दिया है मैं उसका समर्थन करता हूँ।

Kumari Annie Mascarene: (Trivandrum) : I rise to oppose this Bill for the simple reason that we people in Travancore-Cochin State pay 25 per cent of our income from sales tax. A law like this, we are empowered to legislate, no doubt. But, we should always remember that we should be guided by certain principles of legislation and certain principles of taxation which stand far beyond convenience, exploitation and power. From time immemorial, legislation has always been subject to, no matter what kind of Government we have, autocracy, democracy or even tyranny, justice, equity and good conscience, and it has survived up till today. This piece of legislation has brought this legislature to a juncture where we are forced to consider a decision of the judiciary and the judiciary is also, at the same time, forced to consider whether a taxation was legal or not. Here is a juncture when the legislature and the judiciary are in a difficult position to justify their stand. When the judiciary commits an error of judgment, a higher court may repeal it. But, when a legislature commits an error, we repeal that law. Here is a law which would be justified for future. Prospectively, this law would have been justified. But, retrospectively, 2—12 Lok Sabha.

we have done a wrong thing. Unwilling to own it, on dignity, you want to pass it into law. That is what exactly we are doing here. My State gets 25 per cent of its income from sales tax. We pay multiple point sales tax. That is why I have reason to oppose this law. Of course, the common man has to pay the sales tax. The range of exemption is not at all wide in the Travancore-Cochin State. As the statement given in our Parliamentary papers shows, we pay 25 per cent, Bombay gives 29 per cent and Madras 20 per cent. We stand the second. Bombay and Madras, compared to Travancore-Cochin, are big. Our people pay such a heavy taxation. This is to validate a tax which has already been imposed and collected from the people, which in future also they will have to pay. Therefore, apart from the legal point of view, it is an injustice done to my State and the people and therefore I oppose it. I am really surprised that a democratic Government like ours should have taken up this piece of legislation. The Finance Minister, besides being the Finance Minister is also a representative of the people and a part of democracy. If he could only fathom his conscience. . . .

Shri K. K. Basu (Diamond Harbour) : He has none left.

Kumari Annie Mascarene: . . and see whether this legislation is becoming of the Government of which he is a part, he will reconsider and will not allow this law to be passed. I oppose this Bill on the point of injustice. I oppose this law as unreasonable and as regarding the judiciary with the least respect.

Shri Satyendra Narayan Sinha: While I am in general agreement with the objects of the Bill before this House, I feel that there is considerable force in the amendment tabled by Pandit Thakur Das Bhargava.

I am really surprised that though the Supreme Court judgement was delivered on 6th September, 1955 this Ordinance was promulgated on 30th January, 1956.

Shri C. C. Shah: May I point out, Sir, that the amendment of Pandit Thakur Das Bhargava will not help the matter at all. With all respect I am submitting this because the last 3 lines, as the Finance Minister rightly pointed out yesterday, are only by way of abundant caution. Even if you omit not only the words 'levied or collected' but all the three lines, so long as the previous part

[Shri C. C. Shah]

of the Act remains, namely, you validate the Act itself, what follows from the Act, namely levy and collection, both are valid. Therefore, that amendment will not help the purpose which you have in view.

**Shri Pataskar:** That is not under discussion at all now.

**Shri Satyendra Narayan Sinha:** My reason for supporting Pandit Thakur Das Bhargava's amendment is this. During this time-lag, it is possible that the dealers may have refunded the tax collected from the purchasers. In inter-State transactions, very likely the number of purchasers is not very large. Most of them are wholesalers and can easily be spotted. Therefore, I would like to know from the Finance Minister, what would be the position of such of the dealers who have already refunded the tax collected from the purchasers. Secondly after this judgment was delivered, what was the reason for this time-lag? Why should the Government have been sitting tight over this issue for such a long time and should not have taken steps immediately after the judgment? I seek from the Finance Minister clarification of these two points.

**पंडित सी० एन्० मालवीय (रायसेन) :** इतनी बहस के बाद भी मैं यह नहीं समझ सका कि यह बिल इम्मारल (अनैतिक) या अनरीजनेबल (अयुक्ति युक्त) कैसे है। मेरे स्थान से तो जो स्थिति बन गयी है उसके लिहाज से कानून बिल्कुल जरूरी है और इसको पास होना चाहिए। मैं, श्री ठाकुर दास जी का जो प्रमंडमेंट है उसका और जो प्रमंडमेंट श्री शाह साहब ने दिया है उसका भी विरोध करता हूँ, इसलिए कि जहाँ तक कानूनी पोजीशन का सवाल है वह तो साफ है, और जहाँ तक बेइन्साफी और इम्मारलिटी का सवाल है उसके मुताबिक मैं यह कहना चाहता हूँ कि जब सुप्रीम कोर्ट का इसस पहले एक जजमेंट है और पार्लियामेंट को इस बात का हक है कि वह इंटर स्टेट (अन्तरराज्यिक) टैक्स लगाने का कानून पास कर सकती है तो यह इल्जाम जो कि गवर्नमेंट के ऊपर लगाया जाता है कि वह लाज्मोश बैठी रही और उसने कोई कदम नहीं उठाया, वह सही नहीं है। आप टैक्सेशन इन्क्वायरी कमेटी (कर जांच समिति) की तीसरी बाल्युम (खंड) को देखें। उससे आपको मालूम होगा कि कांस्टीट्यूशन पास होने से पहले सेल्स टैक्स की स्थिति क्या थी और उसके पास होने के बाद क्या स्थिति है। उसके बाद कक्ष मुकदमे प्रचलित में गये और

सुप्रीम कोर्ट के जजमेंट से कुछ राज्यों ने यह इंटरप्रिटेशन (निर्बन्धन) निकाला कि जो माल उनके राज्य में दूसरे राज्यों से आता है उस पर वह टैक्स लगा सकते हैं और इस बिना (आधार) पर उन्होंने दूसरे राज्यों के व्यापारियों से रिटर्न (विवरण) मांगना शुरू किया। इससे व्यापारियों को बहुत दिक्कत महसूस होने लगी और यह बात गवर्नमेंट के नोटिस में आई। इस दिक्कत को दूर करने के लिए सन् १९५३ में एक कानफरेंस हुई और उसमें यह चीज हल की गयी कि अगर कोई व्यापारी एक स्टेट से दूसरी स्टेट में माल भेजता है तो उससे रिटर्न न मांगा जाये बल्कि उसकी स्टेट में एसेस करके ही टैक्स प्रसेस कर लिया जाया करे। सवाल यह नहीं था कि वे एकदम लीगलिटी (वैधता) में फंस जायें। डिमांड (मांग) यह थी कि जैसे भी संभव हो सेंट्रल गवर्नमेंट और स्टेट्स गवर्नमेंट्स को इस फाईव ईयर प्लान (पंच वर्षीय योजना) को कार्यान्वित करना है और उसको प्रागे बढ़ाना है और जाहिर है कि उसके लिए हमें रुपये का इन्तजाम करना है और इसी सद्-उद्देश्य को लेकर यह टैक्स लगाया गया है। इसके साथ ही साथ जहाँ कि ऐसे लोगों के साथ हाउस में हमदर्दी दिखाई गई है कि जो सेल्स टैक्स को देते हैं। लेकिन मैं पूछना चाहता हूँ कि जो इसकी प्रदायगी को इवड (आवंचना) करते हैं उनके लिए आपने क्या इन्तजाम किया है और मैं पूछना चाहूंगा अपने उन दोस्तों से जो कि इन इविडेंस के लिए चाहते हैं कि अब उनसे इस टैक्स की वसूली न हो, उनकी सपोर्ट करके क्या वे इस इम्पीरलिज्म (साम्राज्यवाद) को सपोर्ट नहीं कर रहे हैं और देश का ग्रहित नहीं कर रहे हैं?

टैक्सेशन इन्क्वायरी कमिशन ने अपनी रिपोर्ट के बाल्युम ३ में पेज (पृष्ठ) २५ पर आखिर में बतलाया है कि सुप्रीम कोर्ट के जो कांस्टीट्यूशनल रिस्ट्रिक्शंस (संविधानिक प्रतिबंध) थे उनसे हमें दिक्कतें हुई हैं और मैं उनको बतलाते हुए हाउस का ज्यादा समय नहीं लेना चाहता मैं केवल रेलेवेण्ट पोइन्स (संगत अंश) पढ़े बता हूँ जो इस प्रकार है—

Secondly, because of these restrictions, there was greater scope for avoidance of tax, entailing an indirect loss of revenue on almost all States. Traders in one State started to sell direct to unregistered dealers and consumers in another. Similarly, consumers of valuable commodities tried to get these from dealers in another State rather than buy the articles from their local dealers. The practice grew

for sales of goods within a State itself to be shown in the books of accounts as having been made to fictitious dealers outside the State and the goods having then been resold by those dealers to consumers within the State. For valuable commodities like motor vehicles, jewellery, watches, etc., this practice became very common. On transactions that could be shown to be in the course of inter-State trade, the 'exporting' State was prohibited under Article 286 from levying the sales tax; and if the goods delivered as a result of these transactions were shown to be received by individual consumers or unregistered dealers neither could any tax be levied on them by the 'importing' State. Thus, many of these transactions escaped sales tax altogether.

इस तरीके से एक स्टेट को रेवेन्यू से डिप्राइव करना (राजस्वों से वंचित) उसको महकूम करना और इस तरीके से खुद तरकीब निकाल कर मुल्क के बहुत बड़े विकास के काम को रोकना, यह इम्प्रीवेलिटी है या मुल्क के दूसरे फाईव ईयर प्लान को कामयाब बनाने के लिए नेकनीयती से और सुप्रीम कोर्ट के जजमेंट से गाईड होकर (शिफा लेकर) और उसके अलफ्राज का ठीक इंटरप्रेटेशन (निर्बचन) निकाल करके एक ऐसा तरीका निकाला जाये जो सब दिक्कतों को दूर करने वाला हो, वह इम्प्रीवेल (अनैतिक) है? में पूछना चाहता हूँ कि टैक्स को इवेड (अवंचन) करना और कानून की भाड़ लेकर बोलेबाजी की कोशिश करना क्या इम्प्रीवेल (अनैतिक) नहीं है? में समझता हूँ कि यह जो बिल पेश किया गया है बिल्कुल भुनासिब है और साथ ही यह भी इम्प्रीवेल नहीं है जो हम इसे उस जमाने के लिए वेलिडेट (मान्य) कर रहे हैं। जाहिर है कि जो टैक्स दे चुका है उसको वह वापिस नहीं हो सकता और जिन डीलर्स (व्यापारीयों) ने टैक्स को वसूल कर लिया है वह भी उन्हीं के पास है और वह गवर्नमेंट के पास नहीं आया है और सरकार को उसको जरूर उनसे वसूल करना चाहिये। मेरी समझ में डिस्क्रिमीनेशन (भेदभाव) तो तब होगा जब कुछ लोगों से तो टैक्स वसूल कर चुके हैं और जो बाकी रह गये हैं उनसे वसूल न किया जाये। इसलिए मैं समझता हूँ कि इस बिल के जो अलफ्राज हैं वह बिल्कुल दुस्त हैं और मैं उनका पूरे तौर से समर्थन करता हूँ। इसमें जो दफाएँ रक्खी गई हैं, वह इंसाफ की बुनियाद पर क़ायम हैं। देश के हित को ध्यान में रखते हुए इस तरह का टैक्स वसूल करना इम्प्रीवेल

नहीं है। और न ही इसमें सुप्रीम कोर्ट पर किसी तरह का रिफ्लेक्शन (कुप्रभाव) है। सुप्रीम कोर्ट ने क़ानूनी बिधा में हमारा मार्गदर्शन किया है और हम उसके दिखाये हुए मार्ग के अनुसार कानून बना रहे हैं और यह हमारे अखि-त्यार में है। मैं इस बिल में कोई ऐसा हिस्सा या ऐसी दफा नहीं पाता जिसके बारे में हमारे कुछ साहबान ने फ़रमाया है कि यह जस्टिफ़ाईड (उचित) नहीं है। यह इम्प्रीवेल या अनरीजनेबल नहीं है बल्कि मैं समझता हूँ कि इसके खिलाफ जो प्रागुमेंट्स (तर्क) दिये गये हैं वे इम्प्रीवेल हैं और नेशन और देश के हित के खिलाफ हैं।

**Shri C. D. Deshmukh:** It is obvious we are dealing with an extremely complicated matter. One might say in a sense that even when the Constitution was made it may be that all that was intended by the framers of the Constitution was not embodied in the words of it. It may be that the various High Courts and the Supreme Court dealing with this matter have not been too sure from time to time, or at least their Benches have not been too sure from time to time, as to what interpretation to put on the meaning of the words of this particular article. It often happens that a smaller Bench of a High Court may give a ruling and then a fuller Bench may give another ruling. One does not know what would happen even to this ruling. One could not rule this out that if the matter were to be considered again, perhaps some other aspect of it which is not clear to us might become clear then. Therefore, from time to time the duty falls on the legislature as far as possible to undo, shall we say, the mischief that arises from semantics, that is to say, man's incapacity to use words precisely in the way in which they ought to be used.

There are two methods. One is changing the Constitution itself, and the other, making any other laws that may be necessary. So far as the Constitution is concerned, I have no doubt that when we take up the substantive measure in regard to inter-State sales taxes, we may have to suggest some alteration in the Constitution itself. But that, as you have pointed out, is a separate issue which will have to be argued out then on its merits. And that applies to all this question of standardisation and various other matters of which certain hon. Members complained.

Now, reverting to the narrower issue of the language of the Constitution as it is and the interpretation put on it by

[Shri C. D. Deshmukh]

the various courts, I would like to quote two important portions from the two judgments. The first is the *State of Bombay and another vs. the United Motors (India) Limited and others*, 30th March, 1956 :

"We are therefore of the opinion that article 286 (1) (a) read with the explanation prohibits taxation of sales or purchases involving inter-State elements by all States except the State in which the goods are delivered for the purpose of consumption therein in the wider sense explained above. The latter State is left free to tax such sales or purchases which power it derives not by view of Explanation but under article 246 (3) read with Entry 54 of List II. We are of opinion that the operation of clause (2) stands excluded as a result of the legal fiction enacted in the Explanation and the State in which the goods are actually delivered for consumption can impose a tax on inter-State sales or purchases."

They made two distinct pieces of it, excised that from the general sphere of inter-State transactions, brought it under clause (1) and said since it was a sale inside the State it could be taxed:

Here is a second judgment, that is the Supreme Court of India in the case of the *Bengal Immunity Co., Ltd., vs. the State of Bihar and others*, September 6th, 1955 :

"For all the foregoing reasons we are definitely of opinion that until Parliament by law made in exercise of the powers vested in it by clause (2) provides otherwise, no State can impose or authorise the imposition of any tax on sales or purchases of goods when such sales or purchases take place in the course of inter-State trade or commerce, and the majority decision in the *State of Bombay vs. United Motors (India) Ltd.*, in so far as it decides to the contrary cannot be accepted as well-founded on principle or authority."

And then they go on to say :

"The State of Bihar do forbear and abstain from imposing sales-tax on outer-State-dealers in respect of sales or purchases that have taken place in the course of inter-State trade or commerce, even though the goods have been delivered as a direct result of sales or purchases for consumption in Bihar."

In other words, they joined these two together, and made them inter-dependent.

So, the result seems to be that both these conditions have to be satisfied. There has to be a validating law by Parliament under article 286 (2); and the goods have to be delivered for consumption in the taxing State. Where both these conditions are satisfied, then the tax can validly be collected.

Now, so far as the first is concerned, of course that is a matter of location of where the delivery took place and where the consumption took place. That is a matter of establishing the facts. We are supplying the second lacuna, that is to say, the validity, because nevertheless it becomes an inter-State transaction, that is, trade transaction. We are now validating such transactions in order to make the levy and collection of these taxes legal.

In this view, I do not think there is any fear of States exceeding their authority. The goods must be delivered; the goods must be consumed; then only the State becomes capable of taxing that, where authority is existent in the form of a law of Parliament such as they will have if we pass this. Therefore, I do not share the apprehension of Shri C. C. Shah that States will now be encouraged to pass laws in future in order to widen the scope of this or to bring within the scope of their levy and collection transactions which they would not have thought of under explanation to article 286 (1), because the delivery and consumption must be inside the State. That is one condition imposed; and as long as that condition is fulfilled, provided there is authority, as we shall now give, there is no reason why a State should not tax it.

The next point is why we are taking these dates. That is a matter of amendment, but as it was raised, I might as well mention it here. It was asked : Why are we dealing with the period between 1st April, 1951 and 1st April, 1953, if it is correct that all the States started imposing these taxes only after the judgment was delivered? The fact is that the position was not very clear. And I think one can excuse the States and their legal advisers for not importing into it a greater clarity than was exercised, shall we say, by the various courts or their Benches that had handled this issue from time to time.

The material that we have gathered shows that practically all the States have been charging sales-tax on inter-State

transactions from non-resident dealers only with effect from 1st April 1953—that is correct—following the Supreme Court judgment in the *United Motors (India) Ltd., vs. another*. But there were one or two States which were bolder than the others. And where we understand sales-tax or purchase-tax on inter-State transactions was being levied under that explanation even before that date, there while the practical effect of this Bill when passed would be generally to validate collections made between 1st April 1953 and 16th September 1955, we cannot afford to have a lacuna for the period between 1st April 1951 and 1st April 1953. In these circumstances, it will not be desirable to accept that amendment; but we may come to it later.

There is also another factual matter which I should mention here, or clarify, and that is that we started addressing the State Governments, as I mentioned yesterday, only in August last year. But what we did after the first judgment of 1953 was to advise them to hold their horses, so to speak, that is to say, to temper the wind to the lamp which we now knew was going to be shorn as a result of that judgment. We knew that this practice of imposing a tax on inter-State transactions would multiply as a result of that judgment. We were also aware, and we were made aware, of the harassment that it might cause to a large number of traders all over the country. Therefore, we called an official conference together and induced most of the States to agree formally in regard to the administration of the Act. We could not prevent them; we advised them not to. As I mentioned, West Bengal was not interested in imposing or levying or collecting this tax. But some of the other States thought that there was a great deal of money, in it, and they wanted to go forward with it, but most of them agreed to fall into line with the procedural matters that we had agreed with them.

Then came a stage when we were in possession of the recommendations of the Taxation Enquiry Commission. It was then that we thought that this matter now required a little more streamlining in regard to imposition of tax on inter-State transactions. So that we should have time to consider it, and so that the system may not get more tangled in the meanwhile, we advised the State Governments if possible to refrain from imposing the sales tax or to withdraw their legislation.

Some States, knowing what the recommendations of the Taxation Enquiry Commission were, agreed readily. Others were reluctant unless the Centre made up the loss of revenue, which we were reluctant to do, because it was a matter between them and the citizens. So, that was the state of affairs till August-September when this judgment came.

Of course, as soon as the judgment came, every State realised that it could not go on now imposing, levying or collecting these taxes, and gradually we received requests. We did not know what the position was. We did not know how much had been collected, whether they could afford to neglect it or whether a few thousands had been collected or not. It took us a little time to collect all this information. That is why it has taken a little time now to issue the ordinance. But we did issue the ordinance, because we thought we had better not wait again till Parliament met. So, that is how I answer that charge of delay in this particular matter.

Having dealt with all this, I think there are only two more points that remain namely this levy and collection, and further assessment and so on. What we are doing here is removing a ban. We are not legislating afresh, originally so to speak, imposing various kinds of restrictions and putting some qualifications and so on and so forth. What we are doing is that because of the stress of circumstances, we are taking all those laws together, and we say: "Well, whatever law you have passed, we shall regard as valid, we are not suggesting that instead of six pies you must put five pies, instead of including this, you must exclude that and so on, because then that will make the situation still more complicated than it is today, or might make it worse."

Therefore, I admit that this is not the kind of thing that we would have done if we could have constructively done it four or five years ago. We might have then looked at the legislation that they intended to pass and might have made many changes. Now it is never possible to reconstruct that situation. Whether it is of 1951 or of 1953, there is such a large area of uncertainty in this matter that on the whole we think the ends of justice will be served if we validate things as they stand. And that is the only alternative open to us—either we reject this Bill or we pass this Bill. And if we pass this Bill, we have no means of compelling the States now to make any discrimination. We cannot say to them;

[Shri C. D. Deshmukh]

'Please recover it on iron; but do not recover on cloth. Recover from those who have already collected, but do not recover from somebody else'. That is not a matter which we can impose on them by this Bill.

**Mr. Deputy-Speaker:** Is it the intention, if it was possible under the law, that it might be so done? Now, two things are apprehended, that future collections ought not to be made on the strength of this validating law, and whatever has been refunded ought not to be recovered.

**Shri C. D. Deshmukh:** I do not know what future collections are. It is a current transaction and current procedure. Dealers are either registered or unregistered. There are marginal cases where a dealer is not registered. Occasionally, it is found afterwards that he has become subject to a sales tax. Now, whichever way you do it, I have no doubt that there will be a few cases where some States might contend themselves with 'keeping their winnings' so to speak. A few States may either discover them or cases may come to their notice of some dealers who ought to be assessed to this tax, but these cases, I think, will be very marginal and very few. I do not think it is necessary for us in the interest of justice to have any refinement introduced into this. But I do not deny that it is not possible; it may be possible. But I do not think that propriety of desirability demands this.

Now that leaves this last issue, of morality. I am astonished at hon. Members raising the issue of morality in this matter. I can understand their raising issues of legality. But it is because the legal position has been so confused that we want to make it certain.

**Shri K. K. Basu:** Morality is also in confusion possibly.

**Shri Kamath (Hoshangabad):** Amoral.

**Shri C. D. Deshmukh:** Quite right. We have to take an amoral view in this. We came along the legal position and you have been good enough to decide to put it out of the way. So far as morality is concerned, we should not allow our conscience to be burdened by this thought at all. I say that the State is entitled to collect what it could legally collect. When it was collected, it knew that it was collecting it legally.

Then another view was taken by the Supreme Court—and it is open to them to take such a view. After all, truth must

always prevail and, according to them, that was the truth. This situation having arisen, it is our duty to correct it. Therefore, there is no question of ethics or morality here.

I shall not refer to the question of nullifying judgments and so on. We are co-operating with the Supreme Court and indeed, along lines which they have indicated in their judgment itself. Now, the sum involved is quite considerable. There is that point which has weighed with you and other Members that we shall never know the ultimate home of this money when it is refunded, and there is no reason why the community at large should not benefit from the collections which were legal and valid collections when they were made. Therefore, I see no objection whatsoever to our going forward with this Bill.

**Shri S. V. Ramaswamy:** May I know what is the total amount that may be collected as a result of the passing of this Bill?

**Shri C. D. Deshmukh:** Four or five crores of rupees.

**Mr. Deputy-Speaker:** The question is:

"That the Bill to validate laws of States imposing, or authorising the imposition of, taxes on the sale or purchase of goods in the course of inter-State trade or commerce, be taken into consideration."

*The motion was adopted.*

#### Clause 2—(Validation of State Laws etc.)

**Pandit Thakur Das Bhargava:** I beg to move:

Page 1, line 13, and wherever they occur—

for "levied or collected" substitute "levied and collected".

Then I had sent in another amendment which reads:

Page 1, line 13, and wherever they occur—

omit "levied or".

जो कुछ फाइनेंस मिनिस्टर साहब ने कहा है उसको मैं ने गोर से सुना है। इस चीज को सब मानते हैं कि जो कोलेक्टिंग मनी (एकट्टी की गई राशि) है उसका वापिस किया जाना मुश्किल है क्योंकि अगर इसे वापस किया गया तो इससे जो मिडलमैन है उसी को फायदा होगा। इसमें भी कोई शक नहीं है कि जो मिडलमैन है उसका खिलाफ आम तौर पर लोग रहते हैं। इसमें

मुझ कोई एतराज नहीं है। लेकिन मैं प्रार्थना करना चाहता हूँ कि १९५३ में जो ट्यूथ (सर्चार्ज) था वह आज १९५५ में नहीं है। जो आज ट्यूथ नहीं है उसका किया जाना गैर कानूनी है। प्रसन्न बात यह है कि जो कानून था वह दुस्त नहीं था। सन् १९५५ में यह फैसला किया गया कि जो कानून बना है वह दुस्त नहीं है और जो टैक्स आपने वसूल किया है वह ठीक नहीं किया। अब जब कि ट्यूथ आपको मालूम हो गया है तो मेरी समझ में नहीं आता है कि आप क्यों उससे भाग रहे हैं। जो वसूल हो चुका है वह तो वापस नहीं किया जा सकता, इस चीज को मैं मानता हूँ। लेकिन मैं पूछता हूँ कि प्रायदा के लिए आपका क्या फैसला है।

**Mr. Deputy-Speaker:** The answer, as I understand it, is that the shopkeeper has already collected it from the other man. The same principle holds good. Are we now by this legislation allowing this money to continue in the hands of the man who wrongly collected it from the consumer?

**पंडित ठाकुर दास भार्गव :** मैं प्रार्थना करता हूँ कि मुझे ऐसे केसिस मालूम है कि जहाँ पर जो टैक्स १९५१ के बाद उन लोगों को जिन से कि यह वसूल किया गया था, वापस कर दिया गया है। अभी अभी मेरे नोटिस में आया है कि एक आदमी ने २५,००० रुपया वापस किया है।

**Shri C. D. Deshmukh:** There are a few cases where the consumer, usually another petty dealer himself, who had continuous relations with the registered dealer himself deducted the amount from his next payment. That can be adjusted in the subsequent transaction.

**पंडित ठाकुर दास भार्गव :** बहुत से केसिस हैं जिन में लोगों ने यह समझकर कि अब सुप्रीम कोर्ट का फैसला हो गया है, उन्होंने दूसरे लोगों को जिन से कि वसूल किया था, यह रुपया वापस कर दिया है। अगर यह चीज साबित हो जाए कि उन्होंने वापस कर दिया है तो अगर उनसे अब यह रुपया वसूल किया जाए तो यह क्या इन्वॉलेंट (निर्दोष) लोगों के साथ बेइसाफी नहीं होगी। इसके अलावा मुझे यह भी नहीं मालूम है कि क्या १९५१ से १९५३ तक यह जो टैक्स है यह वसूल किया गया है या नहीं।

**Shri C. D. Deshmukh:** The answer is simple. They should not have refunded it until they had received a refund from Government.

**Pandit Thakur Das Bhargava:** The hon. Minister has not followed what I was submitting.

आपने वसूल करना है, आपने वसूल किया नहीं है। यह जो फैसला सुप्रीम कोर्ट का हुआ है इसके मुताबिक जिन लोगों ने वसूल किया है उन्होंने तो वापस कर दिया लेकिन अब इस कानून के पास हो जाने के बाद आप इसके मातहत उनसे फिर इस रकम को वसूल करेंगे।

**Mr. Deputy-Speaker:** That is exactly what he has replied.

**Shri C. D. Deshmukh:** I am saying that when he collected it, he paid it to the Government. He had no business to refund it on the pronouncement of the judgment before he made sure of his own position vis-a-vis Government.

**Mr. Deputy-Speaker:** I understand him to address himself to marginal cases where it has been levied but not collected by the Government. All the same, the man who obtained it from the consumer returned it to the consumer.

**Shri C. D. Deshmukh:** Such cases must be infinitesimally small. Hard cases make bad law.

**Pandit Thakur Das Bhargava:** I know of one case where Rs. 25,000 were returned by one man from whom the tax has not been collected. There may be a few cases.

लेकिन उसूल यह होना चाहिये कि जो लोग बेगुनाह हैं उनको सजा नहीं मिलनी चाहिये चाहे उनकी तादाद कितनी थोड़ी क्यों न हो तो मैं प्रार्थना करता हूँ कि जब सब बात मालूम हो गई है तो उन लोगों से इस टैक्स को वसूल करना, जो इसे वापस कर चुके हैं, क्या यह मारेलेटी (नैतिकता) है? मुझे एक प्लोक याद आ गया है :

सर्वेश्वरा विहिता रीतिः धर्मस्य धनमाजाममीति :

इस में उनको मारेलेटी मालूम नहीं होती है। मैं अब से पूछना चाहता हूँ कि दफा २६५ का क्या बनेगा। जो चीज बाई ला (बिधि द्वारा) वसूल नहीं की जा सकती उसको वसूल करना बाजिब नहीं। इससे लोगों का बिश्वास उठ जाता है। मैं तो यहाँ तक कहने के लिए तयार हूँ कि यह एक सालेस ला (बिधिहीन बिधि) होगा। यह ला नहीं है जो हम बनाने जा रहे हैं और जिस की क से सब चीज जायज करार दी जा रही है। यह कभी नहीं होना चाहिए।

[Pandit Thakur Das Bhargava]

सके मानी यह है कि पालियामेंट की जो डिस्क्री-  
शनरी पावार्ड (स्वबिधेक शक्तियाँ) हैं और  
जिन को उसे एक्सरसाइज (प्रयोग) करना  
चाहिये था उनको उसने इस्तेमाल नहीं किया  
है। यह सब फिकशन है, गैर कानूनी चीज  
है और हमें इसे नहीं करना चाहिये।

हमारे पंजाब लैंड रेवेन्यू एक्ट में एक सैकशन  
है जिसमें लिखा हुआ है कि जो रेवेन्यू एक्ट  
में लिखा हुआ है उसको (सयत्ता का प्रमाण)  
प्रिजम्पशन आफ ट्रूथ माना जाए। एक गांव  
है पंजाब में उसकी वजह तस्मिया में लिखा है  
जिसका नाम भुतन है कि एक भूत एक बांस  
पर चढ़ता और उतरता रहता था और इसी  
वजह से उस गांव का नाम भूतन रख दिया गया।  
वह प्रिजम्पशन थी। यह जो ला हम बना रहे  
हैं यह तो लालेस चीज है। और बे बुनयाद  
फिकशन पर कायम किया जा रहा है। न पहले  
पालियामेंट ने इजाजत दी और न दे सकती  
थी। मुझे तो एक कहानी याद आती है। एक  
राजा था हमारे फाइनेंस मिनिस्टर की तरह  
का और वह अपने इलाके में घूमने के लिए  
जाया करता था। एक बार वह अपने इलाके  
में एक गार्डन (बाग) में गया और वहां जो  
माली था उससे उसने पीने के लिए पानी मांगा।  
उस माली ने एक अनार लिया और उसका  
रस निकाला जिससे कि गलास भर गया और  
राजा को दे दिया। इससे राजा ने समझा कि  
जो मामला लगाया गया है वह कम है और  
उसने हुकम दे दिया कि इसकी दर बढ़ा दी  
जाए। इसके बाद दुबारा जब वह राजा वहां  
गया और पानी मांगा तो उस माली ने फिर  
एक अनार लिया और जब उसमें से रस निकाला  
तो उससे गलास का आठवां हिस्सा भी नहीं  
भरा। उसने पूछा कि क्या वजह हुई तो माली  
ने कहा कि राजा की निगह ठीक नहीं है।

2 P.M.

आपका दावा है कि हमारा मारल और  
पीसफुल ऐप्रोच (नैतिक तथा शांतिपूर्ण दृष्टि-  
कोण) है और आप कहते हैं कि हम मारल  
स्टैंडर्ड से दूर नहीं जाते और डाइसी की डेफीनीशन  
के मुताबिक ला पर चलते हैं। इसलिए आज  
आपको उसी ऐप्रोच (दृष्टिकोण) को कायम  
रखना चाहिए। तीन चार करोड़ रुपये की  
क्या बात है। आज अगर आप जायज तौर से  
सौ करोड़ रुपये का भी टैक्स लगायेंगे तो उसको  
लोग राजी राजी देंगे। लेकिन आप डाउटफुल  
(संदेहयुक्त) तरीके से रुपया लेना चाहते हैं।  
जिसको कि आप खुद कहते हैं कि ऐसा नहीं होगा

चाहिए था। आप कांस्टीट्यूशन बनाकर उसकी  
हमारे हाथ से वेइज्जती करवाना चाहते हैं।  
आप यह कानून कांस्टीट्यूशन की दफा 256  
के पार्ट 2 के खिलाफ बना रहे हैं। कल जो बहस  
हुई उसमें पार्ट 1 पर ही ध्यान दिया गया पर  
पार्ट 2 के प्रावीजन (उपबंधों) का ख्याल भी  
किया गया।

**Mr. Deputy-Speaker:** Wise men have  
also differed. One High Court held that  
article 286 (1) was independent and  
wherever it was inter-State that alone  
applied but the Supreme Court felt  
otherwise.

**Shri C. D. Deshmukh:** The Supreme  
Court itself on two occasions differed.

**Shri C. C. Shah:** The last judgment  
of the Supreme Court was by 4 judges  
against three and of those 4 judges there  
was 1 judge who took a different view  
in the previous judgment.

**पंडित ठाकुर दास भार्गव:** That is  
not the right way. अगर इस  
तरह से माना जाय तो फर्ज कीजिये कि इस  
हाउस में एक कानून पास होता है और एक  
तरफ 41 मेम्बर राय देते हैं और दूसरी तरफ 45  
राय देते हैं, उस हालत में क्या यह कहना ठीक  
होगा कि यह कानून दो भादमियों ने पास किया  
है। मेरे दोस्त कहते हैं कि चार जजों में से  
तीन की एक राय थी और एक की एक राय  
थी। लेकिन जो फैसला हो चुका वह तो  
सातिक (स्पष्ट) है। उस पर नुक्ता चीनी करना  
ठीक नहीं होगा।

**रक्षा संगठन मंत्री (श्री स्यागी):** जो  
फैसला मुल्क के फायदे के लिए हो वही अच्छा  
फैसला है।

**पंडित ठाकुर दास भार्गव:** इसमें श्रेयस  
और प्रेयस का सवाल है। वह फैसला ठीक नहीं  
है जिससे नाजायज तरीके से रुपया आता हो बल्की  
वह फैसला ठीक है जो मारल कोड पर बेस्ड  
(नैतिक सिद्धान्त पर आधारित) है। जो दे  
चुका वह तो दे चुका। लेकिन मुझे जो खराबी  
मालूम होती है वह यह है कि आप प्रायन्दा भी  
बसूल करना चाहते हैं। खुसूसन उस शरूख  
से जो कि रिफंड कर चुका है। उससे आप  
ऐसा रुपया बसूल करना चाहते हैं जिसकी  
कि लैंड की हाइएस्ट जुडीशियरी (उच्चतम न्याय-  
पालिका) इजाजत नहीं देती। इसलिए मैं चाहता  
हूँ कि प्रायन्दा बसूल न किया जाय। मैं उम्मीद  
करता हूँ कि हाउस नेर प्रमोडमेंट को मंजर करेगा



**Shri C. D. Deshmukh:** I do not share the apprehensions, fears and doubts and principles of the hon. Members. Therefore, I oppose the amendment.

**Mr. Deputy-Speaker:** The question is:

Page 1, line 13, and wherever they occur—

for "levied or collected" substitute "levied and collected".

*The motion was negatived.*

**Mr. Deputy-Speaker:** I think the other amendment has been given only just now and the Government does not accept it. According to practice and convention, I do not put it to vote.

The question is :

"That clause 2 stand part of the Bill."

*The motion was adopted.*

*Clause 2 was added to the Bill.*

*Clauses 3 and 1, the Enacting Formula and the Title were added to the Bill.*

**Shri C. D. Deshmukh:** Sir, I beg to move :

"That the Bill be passed."

**Mr. Deputy-Speaker :** The question is:

"That the Bill be passed."

*The motion was adopted.*

## BUSINESS OF THE HOUSE

**Mr. Deputy-Speaker:** The House will now take up the next Bill.

**Shri Bansal (Jhajjar-Rewari):** Sir, before you proceed with the next Bill, I would make an humble suggestion that the House be made to adjourn now. It is already 2-5. The hon. Finance Minister has been making one long speech after another since yesterday and he is likely to make another long speech now and then he will have to present the Budget at five. From the point of view of the House also it would be better if we adjourn now and come with a fresh mind at 5 o'clock to apply our minds to the Budget speech.

**The Minister of Finance (Shri C. D. Deshmukh):** I would rather make my speech now and have my lunch afterwards.

**Shri K. K. Basu (Diamond Harbour):** Let him not impose taxes on tired minds.

**Mr. Deputy-Speaker:** We are pressed for want of time.

**Shri Feroze Gandhi (Pratapgarh Distt.-West cum Rae Bareilly Distt.-East):** We have one hour extra tomorrow.

**Mr. Deputy-Speaker:** I have to make one announcement. As the House is aware, we have a heavy programme of work to be completed before the financial business is taken up. We are already short of time and there is, therefore, no option but to meet on Saturday next. The House will accordingly meet on Saturday, the 3rd March, 1956, for the transaction of Government business.

**Shri Kamath (Hoshangabad):** May I submit that in view of the fact that we adjourned on Monday on account of the death of the Speaker, it would appear indecorous for us to meet on Saturday just to make up for that loss on Monday. It would be very indecorous.

**Mr. Deputy-Speaker:** It is not on account of that; we have to get through the agenda; it is for that. We have to get through the business; therefore, we have to sit on the 3rd March.

So far as this particular work is concerned, we are pressed for time. Unless the hon. Finance Minister feels tired or it is for other reasons, I do not like to have this item adjourned.

**Shri D. B. Pande (Almora Distt.—North-East):** Saturday should not be cut. We have already agreed to sit for longer hours.

**Pandit Thakur Das Bhargava:** I understand that the House has agreed to sit longer hours—till 5-30 P.M. every day—on the basis that all Saturdays shall remain free. That was the basis.

**Mr. Deputy-Speaker:** The hon. Member is well aware that this has been the convention all through. On Saturdays we do not sit normally and therefore we have agreed to sit till 5-30 P.M. and even to start at 10-30 A.M. from the 5th March. If during the course of any day which is normally put down for business—official or non-official—the sitting of the Lok Sabha is interrupted for unavoidable reasons or unexpected reasons, we sit on the next Saturday. The two are mutually exclusive and independent of one another.